शौनकीया

अथर्ववेद संहिता

(मूल पाठ मात्र)

शौनकीया

अथर्ववेद संहिता

(मूल पाठ मात्र)

सम्पादका:

शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री

श्री श्रीकण्ठ शास्त्री एम० ए० व्याकरणाचार्य:

श्री डा० वीराचार्य शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी० साहित्याचार्य:

विद्या बारिधि: श्री प्रेमाचार्य शास्त्री एम० ए०

डा० विनोदवाला शर्मा पी० एच० डी०

दीपचन्द शर्मा

With Compliments
From

Maharshi Sandipani Rashtriya
Veda Vidya Pratishthan, UJJAIN

प्रकाशक:

देव वाणी प्रकाशन

२३१-ए० जी० सी० आर० एनक्लेव, नई दिल्ली-११००९२

ATHARVA VEDA SAMHITA
(Text only)

Price-Rs 100 00
Out of India-U S s-14/-

Published By :
Vinod Bala Sharma
Deep Chand Sharma
Dev Vani Prakashan
A.G.C.R. Enclave
New DELHI-110092

Printed at :
Dev Vani Printing Press,
103-A, Kamla Nagar,
DELHI-110007.

आमुखम्

तद्दिव्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे।
यत्प्रकाशात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसश्छटाः ।।

वेद विश्ववाङ्मय की अमूल्य निधि । उससे प्राचीन, उससे पवित्र और उससे अधिक ज्ञान-विज्ञान एवं आध्यात्मिक रहस्यों से पूर्ण अन्य कोई ग्रन्थ आज संसार के पुस्तकालयों में ढूंढे से भी नहीं मिल सकता। वह ब्रह्म का निःश्वास[1] और महान् देव का सर्वांग सुन्दर अमर काव्य[2] ही नहीं किंतु इससे भी अधिक प्रत्यक्ष शब्द ब्रह्म है।

वेद सृष्टि के कण-कण में भासमान विराट् सौन्दर्य के द्रष्टा क्रान्तदर्शी कवियों की वह दिव्यानुभूति है, जिसमें उन्होंने प्रकृति पुरुष की रहस्यमयी क्रीड़ाओं का अन्तश्चक्षुओं से साक्षात्कार किया है। इसलिए वेद सनातन हैं पूर्ण हैं, और निखिल ज्ञान विज्ञान के मधुमय उत्स हैं। भारतीय संस्कृति के तो वेद प्राण ही हैं। हमारा धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कला, विज्ञान आचार-विचार, नीति रीति सभी कुछ वेदानुप्राणित है। यही क्यों, जीवन एवं साहित्य की कोई विधा—जिसे रूप और शिल्प की दृष्टि से आदर्श तथा नवीनातिनवीन कहकर पुकारते हैं—उसके बीज वैदिक वाङ्मय में न मिलें ऐसा हो नहीं सकता। संक्षेप में भारत के समस्त साहित्य, जन जीवन एवं सभ्यता की आधार भूमि यदि वेदों को ही कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

वेदों की रचना कब हुई, किसने की, क्यों की- आदि प्रश्नों का उत्तर होगा कि मानव संविधान के आदिम निर्माता मनु महाराज के अनुसार वेद वाणी अनादि है, अनन्त है।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा—अर्थात्—वेद वाणी अनादि अनन्त है, सनातन है और ब्रह्माजी द्वारा उसे लोक कल्याण के लिए प्रकट किया गया है। मनु जी का यह मत उनकी अपनी सम्मति तो है ही, किन्तु अपने स्वरूप और उद्भव की परिचायक अन्तःसाक्षी रूप

---

१ अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (बृह० २।४।११)

२ देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति (अथर्व १०।८।३२)।

शतशः श्रुतियों पर आधारित भी है। इनमें से दिग्दर्शनार्थ कतिपय प्रमाण उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा, यथा—

(क) तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत: ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत। (ऋग् १०।९०।९)

(ख) यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्। (ऋग् १०।७०।३)

(ग) यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। (श्वेत० ६।१८)

(घ) युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥ (महा० वनपर्व)

अर्थात् (क) उस यज्ञपुरुष से ऋग्, साम अथर्व उत्पन्न हुए और उसी से यजु: उत्पन्न हुआ (ख) तपो यज्ञ के द्वारा वे वेदवाणी को ग्रहण करने के योग्य हुए और ऋषियों में स्थित हुई उस वाणी को उन्होंने ढूँढ़ लिया। (ग) जो पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो उसके लिये वेदों को भेजता है, मैं मुक्तिकामी उस देव की शरण ग्रहण करता हूं जो आत्मज्योति पुरुष है। (घ) युग के अन्त में इतिहासों समेत अन्तर्हित हुए वेदों को महर्षियों ने ब्रह्माजी की अनुज्ञा से अपने तपोबल द्वारा पुनः प्राप्त किया।

प्रसिद्ध निघण्टु-निरुक्तकार यास्कमुनि ने इसी बात को साक्षात्कृत-धर्माणो ऋषयो बभूवुस्ते अवरेभ्यः असाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः' (नि० १।६) इन शब्दों में कहकर ऋषियों को वेद ज्ञान का साक्षात्कार करने वाला प्रतिपादित किया है।

कुछ भी हो, वेद ईश्वरानुगृहीत प्रतिभात-चेता एवं शिव संकल्प मनीषी ऋषियों की उदात्त एवं मंगलमल दिव्य अनुभूतियों को उन्हीं की तपःपूत वैखरी वाणी के माध्यम से वहन करने वाली विभिन्न ज्ञानधाराओं का ऐसा पवित्र संगम है, कि जिसमें अवगाहन कर प्राणीमात्र अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करते हुए ऐहिकामुष्मिक कल्याण भाजन बन सकता है और परम आध्यात्मिक शान्ति लाभ कर सकता है।

वेद कितने हैं?

बात यह है कि यों तो **'अनन्ता वै वेदाः'** (तैत्ति० ३।१०।११३) के अनुसार वेद का कोई अन्त नहीं ईश्वरीय ज्ञान की इयत्ता भला हो भी

कसे सकती है, परन्तु फिर भी चार वेद तो प्रसिद्ध हैं ही। इसीलिये संस्कृत साहित्य में वेद शब्द चार का पर्याय तक बन गया है। महाभाष्यकार ने **'चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः'** (महाभाष्य १) आदि शब्दों में वेदों का चतुष्टयत्व प्रतिपादन किया है। फिर जिन ऋग्वेद व ब्राह्मणादि ग्रन्थों के प्रमाण देकर कुछ विद्वान् वेदत्रयी का पक्ष उपन्यस्त करते हैं उन्हीं में वेदों का चतुष्टयत्व भी तो मुहुर्मुहु वर्णित है, यथा—

(क) **ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विममीत उ त्वः॥** (निरुक्त १।२)

(ख) **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।** (बृ० उ० २।४।१०)

(ग) **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथववेदः।** (मुण्डकः १।१।५)

(घ) **चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।** (गो० ब्रा० १।२।१६)

(ङ) **ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दाँसि जज्ञिरे। तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।** (यजु० ३१।७)

इन सब प्रमाणों में नाम निर्देश पूर्वक चारों वेदों की स्पष्ट चर्चा की गई है। प्रथम प्रमाण में किस-किस वेद से यज्ञ में किस कार्य का सम्पादन होता है यह भी स्पष्टतया बतलाया गया है। यास्क ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—

'इति ऋत्विक्कर्मणां विनियोगमाचष्टे' (नि० १।३)

अर्थात् इस मन्त्र में क्रमशः ऋग्वेदी होता, सामवेदी उद्गाता, अथर्ववेदी ब्रह्मा और यजुर्वेदी अध्वर्यु के कर्मों का विनियोग कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि ऋग्० यजु० सामवेद की भांति अथर्व भी वेद है और यह भी उतना ही प्राचीन है जितने कि ये। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ब्रह्मवेद नाम्ना प्रसिद्ध यह वेद यज्ञादि के मुख्य संचालक 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विज का वेद होने के कारण अन्य वेदों की अपेक्षा विशेष गौरव रखता है। **'ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः'** (निरुक्त १।३।३)—आदि शब्दों द्वारा यास्क ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।

अथर्ववेद का महत्त्व

अथर्ववेद सारूप होने के कारण 'सिद्ध मन्त्र' कहा जाता है, अर्थात् इस के मन्त्र अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, यथा—

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न ग्रहो न च चन्द्रमा।
अथर्वमंत्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥ (अ० परि० २।५।५)

स्कन्दपुराण कमलालय खण्ड में आथर्वण मन्त्रों के जपमात्र से ही अभिमत फल प्राप्ति कही गई है, यथा—

यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान्, जपेच्छ्रद्धासमन्वितः।
तेषामर्थोद्भवं कृत्स्नं फल प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥

अन्य वेदों में जिन यज्ञ यागादि अनुष्ठानों का प्रतिपादन किया गया है वे प्रायः परलोक में फल देने वाले हैं। उनसे प्राप्त होने वाला स्वर्ग देह त्याग के अनन्तर ही प्राप्त होता है, परन्तु अथर्ववेद इस लोक में आवश्यक शान्ति पुष्टि आदि अलभ्य सिद्धियों को प्रदान करके मानवजीवन को अधिक सुखमय बनाने में योग देता है—यह इसकी विशेषता है। इसी प्रकार राजा एवं राष्ट्र की सुख-समृद्धि के उपयुक्त कंटकोद्धरणादि अपरिमित फल देने वाले तुलापुरुषादि महादान, अथर्ववेद में ही प्रतिपादित हुए हैं। राजाओं का पौरोहित्य तो अथर्वविद् ही करते रहे हैं, क्योंकि राज्याभिषेकादि कर्मों का विस्तृत वर्णन इसी वेद में उपलब्ध होता है। एतद् विषयक अथर्व के महत्त्व को सभी मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं।

हमें हर्ष है कि 'देववाणी प्रकाशन' सम्पूर्ण वेदों के प्रामाणिक मूल-संस्करण प्रकाशित करने की योजना का सूत्रपात अथर्ववेद से प्रारंभ कर रहा है। वेद में स्वरों का बहुत महत्त्व है अतः यह संस्करण स्वरांकन सहित प्रकाशित किया जा रहा है। मूल पाठ उपलब्ध अनेक संस्करणों से शोधकर प्रस्तुत किया गया है, यह और भी प्रसन्नता का विषय है। आशा है कि यह संस्था दुर्लभ वैदिक-साहित्य को सुलभ और सुप्रचारित बनाकर वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार में सफल होगी। वेद प्रेमीजनों को इन ग्रन्थों को अपनाकर अपना अधिकाधिक सहयोग देना चाहिये। धन्यवाद

—श्रीकण्ठ शास्त्री एम० ए० व्याकरणाचार्य

* ॐ *



श्री गणेशाय नमः

(शौनकीया)

अथर्ववेद-संहिता

अथ प्रथमं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वाचस्पतिः ॥ छन्दः—१—३ अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ॥ मंत्र ४ ।

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् । सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥　[१।१]

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता - पर्जन्यः ॥ छन्दः - १, २, ४ अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री ॥ मंत्र ४ ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥

वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् । शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् । एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥　[१।२]

सूत ३

ऋषिः—अथर्वा । देवता—पर्जन्यादयो मन्त्रोक्ताः । छन्दः—१—५ पथ्या पंक्तिः, ६—९ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ९ ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥१॥

विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥२॥

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥३॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥४॥

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् । तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५॥

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रितम् । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्याइव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥

विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥

यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—सिन्धुद्वीपः कृतिर्वा ॥ देवता—आपः । छन्दः १–३ गायत्री, ४ पुरस्ताद् बृहती ॥ मंत्र ४ ।

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥३॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् । अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥४॥ [१।४]

सूक्त ५

ऋषिः— सिन्धुद्वीपः कृतिर्वा ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मंत्र ४ ।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४॥ [१।५]

सूक्त ६

ऋषिः अथर्वा कृतिर्वा ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री ४ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मंत्र ४ ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥२॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३॥

शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्या३ः । शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥४॥ [१।६]

सूक्त ७

ऋषिः - चातनः ।। देवता—अग्निः ३ इन्द्रश्च ।। छन्दः--१-४, ६,७ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।। मंत्र ७ ।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥

अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४॥

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः । त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥ [२।१]

सूक्त ८

ऋषिः - चातनः ।। देवता १, २ बृहस्पतिरग्नीषोमौ च ३, ४ अग्निः । छन्द — १-३ अनुष्टुप्, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ४ ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् । य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत । बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमच्युतावरम् ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः । तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४॥ [२।२]

सूक्त ९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, २ वस्वादयो मन्त्रोक्ताः ३, ४ अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः । इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ्ज्योतिषि धारयन्तु ॥१॥

अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् । सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥२॥

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः । तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥३॥

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने । सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥ [२।३]

सूक्त १०

ऋषिः—अथर्वा । देवता—१ असुरः २-४ वरुणः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्, ३, ४ ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः । ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥१॥

नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुग्धम्।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु। राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥३॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान् महतस्परि। सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥४॥ [२।४]

सूक्त ११

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवताः—पूषादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ पंक्ति २ अनुष्टुप् ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४–६ पथ्या पंक्तिः ॥ मंत्र ६।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः। सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥१॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत। देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥२॥

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि। श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥३॥

नेव मांसे न पीबसि नेव मज्जस्वाहतम्। अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥४॥

वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके। वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः। एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायु पद्यताम् ॥६॥ [२।५]

सूक्त १२

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ।। देवता—यक्ष्मनाशनम् ।। छन्दः—१–३ जगती (२, ३ त्रिष्टुप्) ४ अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या। स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१॥

अङ्गेअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम । अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२॥

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥३॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे । शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ॥४॥ [३।१]

सूक्त १३

ऋषिः भृग्वङ्गिराः ।। देवता—विद्युत् ।। छन्दः—१, २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद् विराड् जगती ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पङ्क्तिः ।। मंत्र ४ ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि । मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥

प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः । विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् । सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥ [३।२]

सूक्त १४

ऋषिः भृग्वङ्गिराः ।। देवता — यमः ।। छन्दः — १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा २, ४ अनुष्टुभौ विराडनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् । महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ।।१।।

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम । सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ।।२।।

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि । ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ।।३।।

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च । अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ।।४।। [३।३]

सूक्त १५

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता — सिन्ध्वादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः — १, भुरिग् बृहती, २ भुरिक् पथ्या पंक्तिः ३, ४ अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः । इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ।।१।।

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः । इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ।।२।।

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ।।३।।

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ।।४।। [३।४]

सूक्त १६

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—१ अग्निः २ वरुणः, अग्निः, इन्द्रः, ३, ४ सीसम् ॥
छन्दः—१-३ अनुष्टुभः ४ ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

येऽमावास्यां॒३॒ रात्रिमु॒दस्थु॑र्व्रा॒जम॒त्त्रिण॑: । अ॒ग्निस्तु॒रीयो॑ यातु॒हा
सो अ॒स्मभ्य॒मधि॑ ब्रवत् ॥१॥

सीसा॒याध्या॑ह॒ वरु॑ण॒: सीसा॑या॒ग्निरुपा॑वति । सीसं॑ म॒ इन्द्र॒: प्राय॑च्छ॒त्
तद॒ङ्ग या॑तु॒चात॑नम् ॥२॥

इ॒दं विष्क॑न्धं सहत इ॒दं बा॑धते अ॒त्त्रिण॑: । अ॒नेन॒ विश्वा॑ ससहे॒ या
जा॒तानि॑ पिशा॒च्याः ॥३॥

यदि॑ नो॒ गां हंसि॒ यद्यश्वं॒ यदि॒ पूरु॑षम् । तं त्वा॒ सीसे॑न विध्यामो॒
यथा॒ नोऽसो॒ अवी॑रहा ॥४॥ [३।५]

सूक्त १७

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवना—योषितो धमन्यश्च ॥ छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप्
२, ३ अनुष्टुप् ४ त्रिपदार्षी गायत्री ॥ मंत्र ४ ।

अ॒मूर्या॑ यन्ति॑ यो॒षितो॑ हि॒रा लोहि॑तवाससः । अ॒भ्रात॑र इव
जा॒मय॒स्तिष्ठ॑न्तु ह॒तव॑र्चसः ॥१॥

तिष्ठा॑व॒रे तिष्ठ॑ पर उ॒त त्वं तिष्ठ मध्यमे । क॒नि॒ष्ठि॒का च॒ तिष्ठ॑ति॒
तिष्ठा॒दिद्॒ ध॒मनि॒र्म॒ही ॥२॥

श॒तस्य॑ ध॒मनी॑नां स॒हस्र॑स्य हि॒राणा॑म् । अस्थु॒रिन्म॑ध्य॒मा इ॒माः सा॒कमन्ता॑
अरंसत ॥३॥

परि॑ व॒: सिक॑तावती ध॒नूर्बृ॑ह॒त्य॑क्रमीत् । तिष्ठ॑ते॒लय॑ता॒ सु क॑म् ॥४॥
[४।१]

सूक्त १८

ऋषिः—द्रविणोदाः ॥ देवता—सवित्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ उपरिष्ठाद् विराड् बृहती; २ निचृज्जगती, ३ विराडास्तारपंक्तिस्त्रिष्टुप् अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

निर्लक्ष्म्यं॑ ललाम्यं१॒ निररा॑तिं सुवामसि । अथ॒ या भ॒द्रा तानि॑ नः प्र॒जाया॒ अरा॑तिं नयामसि ॥१॥

निरर॑णिं सवि॒ता सा॑विषत् प॒दोर्निर्हस्त॑यो॒र्वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । निर॒स्मभ्य॒मनु॑मती॒ ररा॑णा॒ प्रेमां दे॒वा अ॑साविषुः सौभ॑गाय ॥२॥

यत्त॑ आ॒त्मनि॑ त॒न्वां॑ घो॒रमस्ति॒ यद्वा केशे॑षु प्रति॒चक्ष॑णे वा । सर्वं॒ तद् वा॒चाप॑ हन्मो व॒यं दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता सू॑दयतु ॥३॥

रिश्य॑पदीं वृष॑दतीं गोषे॒धां वि॑ध॒मामु॒त । वि॒ली॒ढ्यं॑ ललाम्यं१॒ ता अ॒स्मन्ना॑शयामसि ॥४॥ [४।२]

सूक्त १९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—१ इन्द्रः २ मनुष्येषवः, ३ रुद्रः ४ देवाः ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् २ पुरस्ताद् बृहती ३ पथ्या पंक्तिः ॥ मंत्र ४ ।

मा नो॑ विदन् विव्या॒धिनो॒ मो अ॑भिव्या॒धिनो॑ विदन् । आ॒राच्छ॑र॒व्या॒ अ॒स्मद्विषू॑चीरिन्द्र पातय ॥१॥

विष्व॑ञ्चो अ॒स्मच्छर॑वः पतन्तु॒ ये अ॒स्ता ये चा॒स्याः॑ । दैवी॑र्मनुष्येषवो॒ मम॒मित्रा॒न् वि वि॑ध्यत ॥२॥

यो नः॒ स्वो यो अर॑णः सजा॒त उ॒त निष्ट्यो॒ यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॑ति । रु॒द्रः श॑र॒व्य॑यै॒तान् मम॒मित्रा॒न् वि वि॑ध्यतु ॥३॥

यः स॒पत्नो॒ योऽस॑पत्नो॒ यश्च॑ द्वि॒षञ्छपा॑ति नः । दे॒वास्तं सर्वे॑ धूर्वन्तु॒ ब्रह्म॒ वर्म॒ ममान्त॑रम् ॥४॥ [४।३]

सूक्त २०

ऋषिः — अथर्वा ।। देवता — १ सोमः, मारुतः । २ मित्रावरुणौ, ३ वरुणः । ४ इन्द्रः ।। छन्दः — १ त्रिष्टुप्, २--४ अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः । मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१॥

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद यावयतं परि ॥२॥

इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय । वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥३॥

शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः । न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥ [४।४]

सूक्त २१

ऋषिः अथर्वा ।। देवता इन्द्रः ।। छन्दः अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥१॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज । वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् । वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥४॥ [४।५]

सूक्त २२

ऋषिः - ब्रह्मा ।। देवताः—सूर्यः हरिमा, हृद्रोगश्च ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥१॥

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि । यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥२॥

या रोहिणीर्देवत्या३ गावो या उत रोहिणीः । रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥३॥

शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४॥ [५।१]

सूक्त २३

ऋषिः अथर्वा ।। देवता - वनस्पतयः (रामा, कृष्णा, असिक्नी च) ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च । इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१॥

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् । आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२॥

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव । असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३॥

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि । दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४॥ [५।२]

सूक्त २४

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—आसुरी वनस्पतिः ।। छन्दः—१, ३, ४ अनुष्टुप्, २ निचृत् पथ्या पंक्ति ।। मंत्र ४ ।

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ । तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१॥

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् । अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ॥२॥

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता । सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥३॥

श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युद्भृता । इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥४॥ [५।३]

सूक्त २५

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ।। देवताः यक्ष्मनाशनोऽग्निः ।। छन्दः—१ त्रिष्टुप्. २, ३ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि । तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१॥

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् । हुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२॥

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः । हुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३॥

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि । यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४॥ [५।४]

सूक्त २६

ऋषिः- ब्रह्मा। देवता इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री, २ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप् (एकावसाना), ४ पादनिचृत् गायत्री (एकावसाना)॥ मंत्र ४।

आरे३सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ ॥१॥
सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः। सविता चित्रराधाः ॥२॥
यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥३॥
सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो। मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४॥ [५।५]

सूक्त २७

ऋषिः—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः)। देवता इन्द्राणी ॥ छन्दः—१ पथ्या पंक्तिः २-४ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४।

अमूः पारे पृदाक्व१स्त्रिषप्ता निर्जरायवः। तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३-वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥१॥
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती। विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥२॥
न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः। वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥३॥
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्। इन्द्राण्ये१तु प्रथमाजीता-मुषिता पुरः ॥४॥ [५।६]

सूक्त २८

ऋषि—चातनः॥ देवता—१, २ (पूर्वार्धस्य) अग्निः २ (उत्तरार्धात्)-४ यातुधान्यः॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्, ३ विराट् पथ्या बृहती, ४ पथ्या पंक्तिः ॥ मंत्र ४।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः। दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१॥

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे । या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् । अधा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥ [५।७]

सूक्त २९

ऋषिः — वसिष्ठः ॥ देवता ब्रह्मणस्पतिः अभीवर्तमणिः ॥ छन्दः — अनुष्टुप् ॥ मंत्र ६ ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे । तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः । अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् । अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः । राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥४॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः । यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः । यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥६॥ [६।१]

सूक्त ३०

ऋषिः—अथर्वा (आयुष्कामः) ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप्, शाक्वरगर्भा विराड् जगती ॥ मंत्र ४ ।

विश्वे॑ दे॒वा वस॑वो॒ रक्ष॑ते॒मम॒ताऽदि॑त्या जागृ॒त यू॒यम॒स्मिन् । मेमं सना॑भिरु॒त वा॒न्यना॑भि॒र्मेमं प्राप॒त् पौरु॑षेयो व॒धो यः ॥१॥

ये वो॑ दे॒वाः पि॒तरो॒ ये च॑ पु॒त्राः सचे॑तसो मे शृणु॒ते॒दमु॒क्तम् । सर्वे॑भ्यो व॒ः परि॑ ददाम्ये॒तं स्व॒स्त्ये॑नं ज॒रसे॑ वहाथ ॥२॥

ये दे॑वा दि॒वि ष्ठ ये पृ॑थि॒व्यां ये अ॒न्तरि॑क्ष॒ ओष॑धीषु प॒शुष्व॒प्स्व॑१॒न्तः । ते कृ॑णुत ज॒रस॒मायु॑र॒स्मै श॒तम॒न्यान् परि॑ वृणक्तु मृ॒त्यून् ॥३॥

येषां॑ प्रया॒जा उ॒त वा॑नुया॒जा हु॒तभा॑गा अहु॒ताद॑श्च दे॒वाः । येषां॑ व॒ः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ विभ॑क्ता॒स्तान् वो॑ अ॒स्मै स॑त्र॒सद॑ः कृणोमि ॥४॥ [६।२]

सूक्त ३१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आशापालाः (वास्तोष्पतयः) ॥ छन्दः—१, २, अनुष्टुप् ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

आशा॑नामाशा॒पाले॑भ्य॑श्च॒तुर्भ्यो॑ अ॒मृते॑भ्यः । इ॒दं भू॒तस्याध्य॑क्षेभ्यो वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥१॥

य आशा॑नामाशा॒पाला॑श्च॒त्वार॒ स्थन॑ दे॒वाः । ते नो॒ निर्ऋ॑त्या॒ः पाशे॑भ्यो मु॒ञ्चतांह॑सोअंहसः ॥२॥

अस्रा॑मस्त्वा ह॒विषा॑ यजा॒म्यश्लो॑णस्त्वा घृ॒तेन॑ जु॒होमि । य आशा॑नामाशा॒पाल॒स्तु॒रीयो॑ दे॒वः स नः॑ सुभू॒तमेह व॑क्षत् ॥३॥

स्व॒स्ति मा॒त्र उ॒त पि॒त्रे नो॑ अस्तु स्व॒स्ति गोभ्यो॒ जग॑ते॒ पुरु॑षेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४॥ [६।३]

सूक्त ३२

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—द्यावापृथिवी ॥ छन्दः—१, ३, ४ अनुष्टुप्, २ ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति । न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव । आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२॥

यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् । आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥३॥

विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम् । दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥ [६।४]

सूक्त ३३

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः । या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् । या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे । घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ।४।[६।५]

सूक्त ३४

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—मधु वनस्पतिः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ५ ।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि । मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ।।१।।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् । ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ।।२।।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् । वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ।।३।।

मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः । मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ।।४।।

परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे । यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ।।५।। [६।६]

सूक्त ३५

ऋषिः—अथर्वा (आयुष्कामः) ।। देवता—हिरण्यम् ।। छन्दः—१-३ जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।।१।।

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्ये३तत् । यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।।२।।

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि । इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ।।३

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि । इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ।।४।। [६।७]

।। इति प्रथमं काण्डं समाप्तम् ।।

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ द्वितीयं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—वेनः ॥ देवता—ब्रह्म, आत्मा ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, त्रिष्टुप्, ३ जगती ॥ मन्त्र ५ ।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् । इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१॥

प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३॥

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य । वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥४॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् । यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—मातृनामा ॥ देवता—गन्धर्वाप्सरसः ॥ छन्दः—१, विराड् जगती, २, ३ त्रिष्टुप्, ४ त्रिपाद्विराण्नाम-गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५ ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः । तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१॥

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य । मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्य: सुशेवाः ॥२॥

अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् । समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३॥

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे । ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४॥

याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः । ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—अङ्गिराः । देवता—(आस्राव) भेषजम् ॥ छन्दः—१—५ अनुष्टुप् ६ त्रिपदा स्वाराडुपरिष्टान्महाबृहती ॥ मंत्र ५ ।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् । तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१॥

आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते । तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥२॥

नीचैः खनन्त्यसुरा अरुःस्राणमिदं महत् । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥३॥

उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम् । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥४॥

अरुःस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् । तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥५॥

शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः । इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—जङ्गिडमणिः ॥ छन्दः—१ विराट् प्रस्तारपंक्ति, २--६ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव । मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१॥

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् । मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥२॥

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः । अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ॥३॥

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा । विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् । अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५॥

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः । अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥ [१।४]

सूक्त ५

ऋषिः—भृगुराथर्वणः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृदुपरिष्टाद्बृहती, २ विराडुपरिष्टाद्बृहती, ३ विराट् पथ्या बृहती, ४ जगतीपुरोविराट् त्रिष्टुप्, ५-७ त्रिष्टुप् ॥

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम् । पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न । अस्य सुतस्य स्व१र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२॥

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न । बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥३॥

आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः । श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४॥

इन्द्रस्य नु प्र वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री । अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥५॥

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष । वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥६॥

वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य । आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७॥ [१।५]

सूक्त ६

ऋषिः—शौनकः (सम्पत्कामः) ।। देवताः—अग्निः ।। छन्दः—१-३ त्रिष्टुप् ४ चतुष्पदाऽऽर्षी पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।। मंत्र ५ ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः । सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व। सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४॥

अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तीरति द्विषः। विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥ [२।१]

सूक्त ७

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता — वनस्पतिः (दूर्वा) ।। छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप् २, ३, ५ अनुष्टुप् ४ विराडुपरिष्टाद्बृहती ।। मन्त्र ५ ।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी। आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१॥

यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः। ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२॥

दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्। तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥३॥

परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम्। अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४॥

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह। चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥५॥ [२।२]

सूक्त ८

ऋषिः - भृग्वङ्गिराः ।। देवता—क्षेत्रिय (यक्ष्मकुष्ठादि) नाशनम् ।। छन्द—१, २ अनुष्टुप् ३ पथ्या पंक्तिः ४ विराडनुष्टुप् ५ निचृत् पथ्या पंक्तिः ।। मंत्र ५ ।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥१॥

अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२॥

बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४॥

नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्ये॒भ्यो नमः क्षेत्रस्य पतये । वीरुत्-क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५॥ [२।३]

सूक्त ६

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता:—वनस्पतिः ॥ छन्दः—१ विराट् प्रस्तारपंक्तिः; २—५ अनुष्टुप् ।मंत्र ५ ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु । अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१॥

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् । अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥२॥

अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् । शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३॥

देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः । चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ॥४॥

यश्चकार स निष्करत स एव सुभिषक्तमः । स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५॥ [२।४]

सूक्त १०

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—निर्ऋतिद्यावापृथिव्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ सप्तपदाष्टिः; ३—५, ७, ८ सप्तपदा धृतिः; ६ सप्तदापत्यष्टिः ॥ मंत्र ८ ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१॥

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः। एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥२॥

शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥३॥

इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥४॥

तास् त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥५॥

अमुक्था यस्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥६॥

अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥७॥

सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चतो असृजन्निरेणसः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥८॥

सूक्त ११

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ चतुष्पदा विराड् गायत्री; २, ३, ५ त्रिपदा परोष्णिक्; ४ पिपिलिकमध्या निचृदुष्णिक् ॥ मंत्र ५ ।

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि । आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥१॥

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि । आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥२॥

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३॥

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि । आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि । आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५॥

[३।१]

सूक्त १२

ऋषिः—भरद्वाजः ॥ देवता—१ द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च; २ देवाः; ३ इन्द्रः; ४ आदित्यवस्वङ्गिरसः पितरः; ५ सोम्यासः पितरः; ७ यमसादनम्, ब्रह्म ८ अग्निः ॥ छन्दः—१, ३—६ त्रिष्टुप्; २ जगती; ७—८ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ८ ।

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः । उतान्तरिक्षमुरु वातंगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥

इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति । पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि । वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः । इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥

द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् । अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५॥

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् । तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६॥

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा । अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ॥७॥

आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि । अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८॥ [३।२]

—:०:—

सूक्त १३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः; २, ३ बृहस्पति ४, ५ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—
१—३ त्रिष्टुप् ४ अनुष्टुप्; ५ विराड् जगती ॥ मंत्र ५ ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने । घृतं पीत्वा
मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः । बृहस्पतिः
प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ । शतं च
जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३॥

एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः । कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे
शरदः शतम् ॥४॥

यस्य ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । तं त्वा
भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥५॥

सूक्त १४

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—अग्निभूतपतीन्द्रा मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६
अनुष्टुप्; २ भुरिगनुष्टुप्; ४ उपरिष्ठाद् विराड् बृहती ॥ मंत्र ६ ।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्व१म् । सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो१
नाशयामः सदान्वाः ॥१॥

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् । निर्वो मगुन्द्या दुहितरो
गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२॥

असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्य१ः । तत्र सेदिर्न्यु१च्यतु सर्वाश्च
यातुधान्य१ः ॥३॥

भूतपतिर्निरंजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः । गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः । यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५॥

सूक्त १५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—प्राणः ॥ छन्दः—त्रिपाद्गायत्री ॥ मत्र ६ ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥१॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥२॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥३॥

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥४॥

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥५॥

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभे. ॥६॥ (३।५)

सूक्त १६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवताः—१ प्राणापानौ; २ द्यावापृथिवी; ३ सूर्यः; ४ अग्निः; ५ विश्वम्भरः ॥ छन्दः—१, ३ एकपदाऽऽसुरी त्रिष्टुप्; २ एकपदाऽऽसुरुष्णिक्; ४, ५ द्विपदाऽऽसुरी गायत्री ॥ मंत्र ५ ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२ ॥

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥
विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥ [३।६]

सूक्त १७

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—ओजःप्रभृतीनि ॥ छन्दः—१—६ एकपदाऽऽसुरी त्रिष्टुप्; ७ आसुर्युष्णिक् ॥ मंत्र ७ ।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥
सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२॥
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३॥
आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४॥
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५॥
चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६॥
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७॥ (३।६)

सूक्त १८

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—द्विपदा साम्नी बृहती ॥ मंत्र ५ ।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१॥
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२॥
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३॥
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥४॥
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥५॥ (४।१)

सूक्त १९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—४ निचृद् विषमा त्रिपाद्गायत्री; भुरिग् विषमा त्रिपाद्गायत्री ॥ मंत्र ५ ।

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥ (४।४)

सूक्त २०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वायुः ॥ छन्दः—१—४ निचृद् विषमा त्रिपाद्गायत्री; ५ भुरिग् विषमा त्रिपाद्गायत्री ॥ मंत्र ५ ।

वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥
वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥
वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥ (४।४)

सूक्त २१

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—१—४ निचृद् विषमा त्रिपाद्गायत्री; भुरिग् विषमा त्रिपाद्गायत्री ॥ मंत्र ५ ।

सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

सूर्य यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥
सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥ (४।४)

सूक्त २२

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—चन्द्रः ॥ छन्द—१–४ निचृद् विषमा त्रिपाद्गायत्री; ५ भुरिग् विषमा त्रिपाद्गायत्री ॥ मंत्र ५ ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥५॥ (४।५)

सूक्त २३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१–४ समविषमा त्रिपाद्गायत्री; ५ स्वराड् विषमा त्रिपाद्गायत्री ॥ मंत्र ५

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥

आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥
आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥
आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥
आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म ॥५॥ [४।६]

सूक्त २४

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आयुः ॥ छन्दः—१, २, पुरउष्णिक् पंक्तिः; ३, ४ पुरोदेवत्या पंक्तिः; ५ चतुष्पदा बृहती; ६–८ भुरिक् चतुष्पदा बृहती । मंत्र ८ ।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१॥
शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२॥
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३॥
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४॥
जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५॥
उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७॥

भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः । यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८॥ [४।७]

सूक्त २५

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—पृश्निपर्णी ॥ छन्दः—१-३, ५ अनुष्टुप्; ४ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः । उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१॥

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत । तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२॥

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति । गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३॥

गिरिमेनां आ वेशय कण्वाञ्जीवितयोपनान् । तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४॥

पराच एनान् प्र णुद कण्वाञ्जीवितयोपनान् । तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५॥ [४।८]

सूक्त २६

ऋषिः—सविता ॥ देवताः—पशवः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; ४ भुरिगनुष्टुप्; ५ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष । त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् । सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२॥

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः । सं धान्य॑स्य या स्फातिः संस्राव्ये॑ण हविषा॑ जुहोमि ॥३॥

सं सिञ्चामि गवां॑ क्षीरं समाज्येन बलं रसम् । संसिक्ता अस्माकं॑ वीरा ध्रुवा गावो मयि गोप॑तौ ॥४॥

आ ह॑रामि गवां॑ क्षीरमाहा॑र्षं धान्यं१ रसम् । आहृ॑ता अस्माकं॑ वीरा आ पत्नी॑रिदमस्तकम् ॥५॥ [४।६]

सूक्त २७

ऋषिः—कपिञ्जलः । देवता—१–५ ओषधिः; ६ रुद्रः; ७ इन्द्र ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ७ ।

नेच्छत्रुः प्राशं॑ जयाति सह॑मानाभिभूर॑सि । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥१॥

सुपर्णस्त्वान्व॑विन्दत् सूकरस्त्वा॑खनन्नसा । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२॥

इन्द्रो॑ ह चक्रे त्वा बाहावसुरे॑भ्य स्तरी॑तवे । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३॥

पाटामिन्द्रो व्या॑श्नादसुरे॑भ्य स्तरी॑तवे । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४॥

तयाहं शत्रूं॑न्त्साक्ष इन्द्रः॑ सालावृकां॑ इव । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥५॥

रुद्र जला॑षभेषज नील॑शिखण्ड कर्म॑कृत् । प्राशं प्रति॑प्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥६॥

तस्य प्राशं त्वं ज॑हि यो न॑ इन्द्राभिदास॑ति । अधि नो ब्रूहि शक्ति॑भिः प्राशि मामुत्त॑रं कृधि ॥७॥ [५।१]

सूक्त २८

ऋषिः—शम्भुः ॥ देवता —१, ३ जरिमा, आयुः; २ मित्रावरुणौ; ४, ५ द्यावापृथिव्यादयः ॥ छन्दः—१ जगती; २-४ त्रिष्टुप्; ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये । मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१॥

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ । तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२॥

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः । मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने । यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४॥

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन् । मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५॥ [५।२]

सूक्त २९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः; २ जातवेदाः, त्वष्टा, सविता; ३, ७ इन्द्रः, ४,५ द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, आपः, ६ अश्विनौ । छन्दः—१ अनुष्टुप्; २,३,५–७ त्रिष्टुप्; ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपंक्तिः । मन्त्र ७ ।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले । आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१॥

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै । रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२॥

आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ । जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३॥

इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्। एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४॥

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्ताम्। ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५॥

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः। सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६॥

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा। तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७॥ [५।३]

सूक्त ३०

ऋषिः—प्रजापतिः ॥ देवता—१ मनः; २ अश्विनौ; ३, ४ औषधिः; ५ दम्पती।
छन्दः—१ पथ्या पंक्तिः; २, ४, ५ अनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ५।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति। एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१॥

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः। सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२॥

यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः। तत्र मे गच्छताद्धवं शल्यइव कुल्मलं यथा ॥३॥

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्। कन्या[नां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥४॥

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्। अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५॥ [५।४]

सूक्त ३१

ऋषिः—काण्वः ।। देवताः—१ मही; २–५ क्रिमिजम्भनम् ।। छन्दः—१ अनुष्टुप् २,४ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ।। मंत्र ५।

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी। तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ।।१।।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्। अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।२।।

अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन्। शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ।।३।।

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्। अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ।।४।।

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः। ये अस्माकं तन्व[मा]विविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ।।५।। [५।५]

सूक्त ३२

ऋषिः—काण्वः ।। देवता—आदित्यः ।। छन्दः—१ त्रिपाद्भुरिग्गायत्री; २-५ अनुष्टुप्; ६ चतुष्पान्निचृदुष्णिक् ।। मंत्र ६।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ।।१।।

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ।।२।।

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ।।३।।

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ।।४।।

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि। भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६॥ [६।१]

सूक्त ३३

ऋषिः—ब्रह्मा॥ देवता—यक्ष्मविवर्हणम्॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ ककुम्मत्यनुष्टुप् ४ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ५ उपरिष्ठाद् विराड् बृहती; ६ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप्; ७ पथ्या पंक्ति॥ मंत्र ७।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि। यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्। यक्ष्मं दोषण्यं मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्। यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि। यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्। यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥५॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः। यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥६॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि। यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥७॥ [६।२]

सूक्त ३४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ पशुपतिः; २ देवाः; ३ अग्निर्विश्वकर्मा; ४ वायुः प्रजापतिः; ५ आशीः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् । निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥१॥

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः । उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥२॥

ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च । अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥३॥

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः । वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥४॥

प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् । दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥५॥ [६।३]

सूक्त ३५

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—विश्वकर्मा ॥ छन्दः—१ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २,३ त्रिष्टुप्; ४,५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः । या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१॥

यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् । मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥२॥

अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः । यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३॥

अदुान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः
यदेनश्चकृवन्बुद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३॥

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् । बृहस्पतये
महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ॥४॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । इमं यज्ञं
विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५॥ [६।४]

सूक्त ३६

ऋषिः—पतिवेदनः ॥ देवता—१ अग्निः, २ सोमः, अर्यमा, धाता; ३ अग्नीषोमौ; ४ इन्द्रः; ५ सूर्यः; ६ धनपतिः; ७ हिरण्यम्, भगः; ८ ओषधिः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २, ५-७ अनुष्टुप्; ३,४ त्रिष्टुप्; ८ निचृत् पुरउष्णिक् ॥ मंत्र ८ ।

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥१॥

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् । धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि
पतिवेदनम् ॥२॥

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति । सुवाना
पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३॥

यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव । एवा भगस्य
जुष्टेयमस्तु नारी सम्प्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४॥

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारय यो वरः
प्रतिकाम्यः ॥५॥

आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु । सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥६॥

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः । एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७॥

आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः । त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८॥ [६।५]

॥ इति द्वितीयं काण्डम् समाप्तम् ॥

* ॐ *

अथर्ववेद-संहिता

अथ तृतीयं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ अग्निः; २ मरुतः; ३—६ इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्; २ विराड्गर्भा भुरिक् त्रिष्टुप्, ३, ६ अनुष्टुप्, ५ विराट् पुरउष्णिक् ।मंत्र ६ ।

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् । स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् । अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२॥

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि । युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३॥

प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् । जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४॥

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् । अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा । चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, २ अग्निः, ३, ४ इन्द्रः, ५ द्यौः, ६ मरुतः ॥ छन्दः—१, ५, ६ त्रिष्टुप्, २—४ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् । स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१॥

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि । वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर । अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत । अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥४॥

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि । अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना । तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥　　[१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा भुरिक् पंक्तिः, ५, ६ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ६ ।

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१॥

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् । यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२॥

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः । इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३॥

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् । अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत । इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५॥

यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः। अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३, ६, ७ त्रिष्टुप्, ४, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ७ ॥

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज। सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः। वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै। जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥

अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु। अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४॥

आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्। तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५॥

इन्द्रेन्द्र मनुष्याः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः। स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६॥

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन्। तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७॥ [१।४]

सूक्त ५

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सोमः, पर्णमणिः ॥ छन्दः—१ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्; २, ३, ५-७ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराडुरोबृहती ॥ मंत्र ८ ।

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्। ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् । अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् । तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३॥

सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः । तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥

आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये । यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः । उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये । उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया । संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥ [१।५]

सूक्त ६

ऋषिः—जगद्वीजं पुरुषः ॥ देवता—अश्वत्थः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ८ ॥

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि । स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥

तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाध दोधतः । इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२॥

यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे । एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३॥

यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः । तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४॥

सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः । अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥५॥

यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् । एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ॥६॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् । न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्त्तनम् ॥७॥

प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा । प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८॥ [२।१]

सूक्त ७

ऋषिः भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—१–३ हरिणः, ४ विचृतौ तारके, ५ आपः, ६, ७ यक्ष्मनाशनम् ॥ छन्दः—१–५, ७ अनुष्टुप्, ६ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ७ ॥

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् । स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१॥

अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् । विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः । तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३॥

अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके । वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४॥

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः । आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५॥

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे । वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६॥

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत । अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७॥ [२।२]

सूक्त ८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१—४ मित्रादयो विश्वेदेवाः, ५, ६ मनः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्, २,६ जगती, ४ विराड् बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ६ ॥

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः । अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥१॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः । हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥२॥

हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे । अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३॥

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् । अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥४॥

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि । अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥५॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६॥ [२।३]

सूक्त ९

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ, विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—३—५, अनुष्टुप्, ४ चतुष्पान्निचृद्बृहती, ६ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ६ ।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौष्पिता पृथिवी माता । यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥१॥

अश्लेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् । कृणोमि वध्रि विष्कंन्धं मुष्काबर्हो गवांमिव ॥२॥

पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बंध्नन्ति वेधसः । श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥

येनां श्रवस्यवश्चरंथ देवा इवासुरमायया । शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥४॥

दुष्ट्यै हि त्वां भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् । उदाशवो रथां इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥५॥

एकंशतं विष्कंन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु । तेषां त्वामग्र उज्जंहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥६॥ [२।४]

सूक्त १०

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता अष्टका ।। छन्दः—१--३, ८--११, १३ अनुष्टुप्, ४--६, १२ त्रिष्टुप्, ७ षट्पदा विराडगर्भातिजगती ।। मंत्र १३ ।।

प्रथमा ह व्यु॑वास सा धेनुरंभवद् यमे । सा नः पयंस्वती दुहामुत्तंरामुत्तरां समांम् ॥१॥

यां देवाः प्रतिनन्दंन्ति रात्रिं धेनुमुंपायतीम् । संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥

संवत्सरस्यं प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपास्महे । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छंदास्वितंरासु चरति प्रविष्टा । महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिंगाय नवगज्जनित्री ॥४॥

वानस्पत्या ग्रावांणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणंम् । एकांष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥

इडांयास्पदं घृतवंत् सरीसृपं जातंवेदः प्रति हव्या गृभाय । ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूंपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६॥

आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम । पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत । सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७॥

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥८॥

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् । समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥९॥

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१०॥

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे । गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥११॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् । तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२॥

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः । कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३॥ [२।५]

सूक्त ११

ऋषिः—ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च ॥ देवता—इन्द्राग्नी, आयुः, यक्ष्मनाशनम् ॥ छन्दः—१–३ त्रिष्टुप्, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५, ६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ॥ मंत्र ८ ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव । तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् । इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥४॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् । व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५॥

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् । शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ॥६॥

जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा । जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७॥

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा । यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया । तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८॥

[३।१]

सूक्त १२

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—शाला, वास्तोष्पतिः ।। छन्दः—१, ४, ५, त्रिष्टुप्, २ विराड् जगती, ३ बृहती, ६ शक्वरीगर्भा जगती, ७ आर्ष्यनुष्टुप् ८ भुरिक् ९ अनुष्टुप् ।। मंत्र ९ ।

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा । तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१॥

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती । ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

धरुण्य᳡सि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या । आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्यन्दमानाः ॥३॥

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् । उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे । तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५॥

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् । मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६॥

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह । एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७॥

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामभृतेन संभृताम् । इमां पात्रीममृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९॥ [३।२]

सूक्त १३

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—सिन्धुः, आपः, वरुणः ॥ छन्दः— १, निचृदनुष्टुप्, २-४, ७ अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती, ६ निचृदनुष्टुप् ॥ मन्त्र७ ।

यददः संप्रयतीरहावनदता हते । तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥

यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत । तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन ॥२॥

अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हिकम् । इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥३॥

एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् । उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४॥

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः । तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५॥

आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् । मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६॥

इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः । इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७॥ [३।३]

सूक्त १४

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—गोष्ठः, अर्यमादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१--५ अनुष्टुप् ६ आर्षी त्रिष्टुप्, ॥ मंत्र ६ ।

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या । अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१॥

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः । समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२॥

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः । बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३॥

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः । रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६॥ [३।४]

सूक्त १५

ऋषिः—अथर्वा (पण्यकामः) ॥ देवता—१ इन्द्रः, २ पन्थानः, ३ अग्निः, ४ प्रपणः विक्रयश्च ५ देवाः, अग्निः, ६ देवाः, इन्द्रः, प्रजापतिः, सविता, सोमः, अग्निः, ७ वैश्वानरः, ८ जातवेदाः । छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्, २, ३, ६ त्रिष्टुप्, ४ षट्पदा बृहतीगर्भा विराडत्यष्टिः, ५ विराड् जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ८ ।

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु । नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति । ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय । यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् । शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु । इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ॥४॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ॥५॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः । तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥६॥

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः । स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥

विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः । रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥ [३।५]

सूक्त १६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ अग्नीन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः, २–६ भगः, ७ उषाः ॥
छन्दः—१ आर्षी जगती, २, ३, ५–७ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ७ ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥१॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

समध्वरायोषसो नमन्तः दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥ [४।१]

सूक्त १७

ऋषिः—विश्वामित्रः ।। देवता—सीता ।। छन्दः—१ आर्षी गायत्री, २, ५, ६ त्रिष्टुप् ३ पथ्या पङ्क्तिः, ४, ६ अनुष्टुप्, ७ विराट् पुरउष्णिक्, ८ निचृदनुष्टुप् ।। मंत्र ६ ।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् । विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२॥

लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु । उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम् ॥३॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥६॥

शुनसीरेहस्म मे जुषेथाम् । यद् दिवि चक्रथः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥७॥

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव । यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९॥ [४१२]

सूक्त १८

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—वनस्पतिः (वाणपर्णी) ।। छन्दः—१--३, ५ अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पादुष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्या पङ्क्तिः ।। मन्त्र ६ ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् । यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२॥

नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ । परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥३॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः । अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः । उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् । मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥ [४१३]

सूक्त १९

ऋषिः—वसिष्ठः ।। देवता—विश्वे देवाः, इन्द्रः । छन्दः—१ पथ्या बृहती, २, ४ अनुष्टुप्, ३ भुरिग्-बृहती, ५ त्रिष्टुप् ६ षट्पदा त्रिष्टुप् ककुम्मतीगर्भाऽतिजगती, ७ विराडास्तारपङ्क्तिः, ८ पथ्या पङ्क्तिः ।। मन्त्र ८ ।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् । संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् । वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२॥

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् । क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत । इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४॥

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि । एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः । पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६॥

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते । जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्ये[षां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥८॥ [४।४]

सूक्त २०

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१, २, ५ अग्निः, ३ अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः. देवीः, ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः. विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, ६ इन्द्रवायू ७ अर्यमा बृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजी, ८ विश्वानि भुवनानि, ९ पञ्च प्रदिशः, १० वायुः, त्वष्टा ॥ छन्दः– १—५, ७, ९, १० अनुष्टुप्; ६ पथ्या पंक्तिः, ८ विराड् जगती ॥ मंत्र १० ।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव । प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२॥

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः । प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ॥३॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥४॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥५॥

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इज्जनः संगत्या सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥६॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥७॥

वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः। उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८॥

दुहां मे पञ्च प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम् । प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ॥९॥

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि । आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१०॥ [४।५]

सूक्त २१

ऋषिः—वसिष्ठः ।। देवता—१—७ अग्निः, ८—११ सवित्रादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—१ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्; २, ३, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ५ जगती, ६ उपरिष्टाद् विराड् बृहती, ७ विराड्-गर्भा त्रिष्टुप्, ९ निचृदनुष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।। मन्त्र १० ।

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु । य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१॥

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु । य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्य[ः । यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३॥

यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः। यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४॥

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः। वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६॥

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति। ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम्। विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८॥

शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः। अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः। वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१०॥ [५।१]

सूक्त २२

ऋषिः—वसिष्ठः ।। देवता—विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः, वर्चः । छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्; २, ५, ६ अनुष्टुप्; ३ पञ्चपदा परानुष्टुप् विराडतिजगती, ४ षट्पदा जगती ।। मन्त्र ६ ।

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव। तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१॥

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु। देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥

येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः। येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३॥

यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः । यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः । तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४॥

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते । तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥५॥

हस्ती मृगाणां सषदामतिष्ठावान् बभूव हि । तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिञ्चामि मामहम् ॥६॥ [५।२]

सूक्त २३

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—योनिः ॥ छन्दः—१–४ अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टाद् भुरिग् बृहती ६ स्कन्धोग्रीवा बृहती ॥ मन्त्र ६ ।

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् । इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥१॥

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् । आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् । भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥३॥

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च । तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ॥४॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते । विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ॥५॥

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव । तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥६॥ [५।३]

सूक्त २४

ऋषिः—भृगुः ।। देवताः—वनस्पतिः, प्रजापतिः ।। छन्दः—१, ३–७ अनुष्टुप्; २ निचृत् पथ्या पङ्क्तिः ।। मंत्र ७ ।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः । अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥१॥

वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु । सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे ॥२॥

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः । वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३॥

उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् । एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥४॥

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर । कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५॥

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः । तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥६॥

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते । ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥७॥　　[५।४]

सूक्त २५

ऋषिः—भृगुः ।। देवता—कामेषुः; मित्रावरुणौ ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र ६ ।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे । इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१॥

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्पकुल्मलाम् । तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२॥

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता । प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३॥

शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा । मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥४॥

आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥५॥

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६॥ [५।५]

सूक्त २६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ साग्नयो हेतयः, २ सकामा अविष्यव; ३ अब्युक्ता वैराजः; ४ सवाताः प्रविध्यन्तः; ५ सौषधिका निलिम्पाः; बृहस्पतियुक्ता अवस्वन्तः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ५, ६ जगती; ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्; सर्वाः (१–६) पञ्चपदा विपरीतपादलक्षाः ॥ मन्त्र ६ ।

विनियोगः—संग्राम कर्म में, व सर्पादि का भय दूर करने में सूक्ताभिमत्रित अपामार्ग का प्रयोग करे (कौ० ५०।३-५)

येऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः । ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१॥

येऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः । ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥२॥

येऽ३स्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३॥
येऽ३स्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४॥
येऽ३स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः ।
नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥५॥
येऽ३स्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६॥
[६।१]

सूक्त २७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ प्राची, अग्निः, असितः, आदित्याः; २ दक्षिणा, इन्द्रः, तिरश्चिराजिः, पितरः, ३ प्रतीची, वरुणः, पृदाकुः, अन्नम्; ४ उदीची, सोमः, स्वजः, अशनिः, ५ ध्रुवा, विष्णुः, कल्माषग्रीवः, वीरुधः; ६ ऊर्ध्वा, बृहस्पतिः, श्वित्रः, वर्षम् ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ अष्टिः; २ अत्यष्टिः; ५ भुरिगष्टिः; सर्वाः (१–६) पञ्चपदाः ॥ मन्त्र ६ ।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं-वो जम्भे दध्मः ॥६॥ [६।२]

सूक्त २८

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—यमिनी ॥ छन्दः—१ अतिशाक्वरीगर्भा चतुष्पदातिजगती; २. ३ अनुष्टुप्; ४ यवमध्या विराट्; ककुप्; ५ त्रिष्टुप् ६ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्-मन्त्र ६ ।

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥१॥

एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी । उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२॥

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा । शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥३॥

इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव । पशून् यमिनि पोषय ॥४॥

यत्रा॑सुहा॒र्दः॑ सु॒कृतो॒ मद॑न्ति वि॒हाय॒ रोगं॑ त॒न्वः॒ स्वायाः॑ । तं लोकं॑ य॒मिन्य॑भि॒संब॑भूव॒ सा नो॒ मा हिं॑सी॒त् पुरु॑षान् प॒शूंश्च॑ ॥५॥

यत्रा॑ सु॒हार्दां॑ सु॒कृता॑मग्निहोत्र॒हुतां॒ यत्र॑ लो॒कः । तं लो॒कं य॒मिन्य॑भि॒संब॑भूव॒ सा नो॒ मा हिं॑सी॒त् पुरु॑षान् प॒शूंश्च॑ ॥६॥ [६।३]

सूक्त २९

ऋषिः—उद्दालकः ॥ देवता—१-६ शितिपाद् अविः; ७ कामः; ८ भूमिः । छन्दः—१, ३ पथ्या पङ्क्तिः; २, ४-६ अनुष्टुप्, ७ षट्पदा उपरिष्टाद्दैवीबृहती ककुम्मतीगर्भा विराड् जगती; ८ उपरिष्टाद्बृहती ॥ मन्त्र ८ ।

विनियोगः—ग्रह यज्ञ में होम (शान्तिकल्प १५)

यद् राजा॑नो वि॒भज॑न्त इष्टापू॒र्तस्य॑ षोड॒शं य॒मस्या॒मी स॑भा॒सदः॑ । अ॒विस्तस्मा॑त् प्र मु॑ञ्चति द॒त्तः शि॑ति॒पात् स्व॒धा ॥१॥

सर्वा॒न् कामा॑न् पूरयत्या॒भव॑न् प्र॒भव॒न् भव॑न् । आकू॑ति॒प्रोऽवि॑र्द॒त्तः शि॑ति॒पान्नोप॑ दस्यति ॥२॥

यो ददा॑ति शिति॒पाद॒मविं॑ लो॒केन॒ संमि॑तम् । स नाक॑म॒भ्यारो॑हति॒ यत्र॑ शु॒ल्को न क्रि॒यते॑ अब॒लेन॒ बली॑यसे ॥३॥

पञ्चा॑पूपं शिति॒पाद॒मविं॑ लो॒केन॒ संमि॑तम् । प्र॒दा॒तोप॑ जीवति पितॄ॒णां लो॒केऽक्षि॑तम् ॥४॥

पञ्चा॑पूपं शिति॒पाद॒मविं॑ लो॒केन॒ संमि॑तम् । प्र॒दा॒तोप॑ जीवति सूर्या॑मा॒सयो॒रक्षि॑तम् ॥५॥

इरे॑व॒ नोप॑ दस्यति समु॒द्र इ॑व॒ पयो॑ म॒हत् । दे॒वौ स॑वा॒सिना॑विव शिति॒पान्नोप॑ दस्यति ॥६॥

क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमाविवेश । कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥

भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् । माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८॥ [६।४]

सूक्त ३०

ऋषिः — अथर्वा ।। देवता —सांमनस्यम् ।। छन्दः—१--४ अनुष्टुप् ५ विराड् जगती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप् । मंत्र ७ ।

विनियोग — हृदयों को परस्पर मिलाने में (कौ० १२।५)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥ [६।५]

सूक्त ३१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अग्न्यादयः पाप्महनो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१–३, ६-११ अनुष्टुप् भुरिगनुष्टुप, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ११ ।

विनियोगः—उपनयन के बाद ब्रह्मचारी की दीर्घ आयु के लिये इससे उसके शरीर को अभिमंत्रित करे (कौ० ५८।३)

वि॒दे॒वा ज॒रसा॑वृतन् वि त्वम॑ग्ने अरा॑त्या । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥१॥

व्या॒र्त्या॒ पव॑मानो॒ वि श॒क्रः पा॑पकृ॒त्यया॑ । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥२॥

वि ग्रा॒म्याः प॒शव॑ आर॒ण्यैर्व्या॒ऽ२॒स्तृष्ण॑यासरन् । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥३॥

वी३॒मे द्यावा॑पृथि॒वी इ॒तो वि पन्था॑नो॒ दिशं॑दिशम् । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥४॥

त्वष्टा॑ दुहि॒त्रे व॑ह॒तुं यु॑न॒क्तीती॒दं विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि या॑ति । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥५॥

अ॒ग्निः प्रा॒णान्त्सं द॑धाति च॒न्द्रः प्रा॒णेन॒ संहि॑तः । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥६॥

प्रा॒णेन॑ वि॒श्वतो॑वीर्यं॒ दे॒वाः सूर्यं॒ समै॑रयन् । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥७॥

आ॒यु॒ष्मता॑मायु॒ष्कृतां॑ प्रा॒णेन॑ जीव॒ मा मृ॑थाः । व्य१॒हं सर्वे॑ण पा॒प्मना॒ वि यक्ष्मे॑ण॒ समायु॑षा ॥८॥

प्राणेनं प्राणतां प्राणेहैव भंव मा मृथाः । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९॥

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०॥

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृतां वयम् । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११॥ [६।६]

॥ इति तृतीयं काण्डं समाप्तम् ॥

* ॐ *

अथर्ववेद-संहिता

अथ चतुर्थं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—वेनः ।। देवता—बृहस्पतिः, आदित्यः ।। छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप २, ५ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ७ ।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः । तस्मा एतं सुरुचं
ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२॥

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति । ब्रह्म
ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् । अहर्य-
च्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम । एष जज्ञे
बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् । त्वं विश्वेषां
जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—वेनः ।। देवता—आत्मा ।। छन्दः—१–५, ८ त्रिष्टुप्, ६ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, ७ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ८ ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यो३ स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेताम् । यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्व१न्तरिक्षम् । यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः । इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः । यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् । तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—व्याघ्रः ।। छन्दः—१ पथ्यापंक्तिः; २, ४—६ अनुष्टुप् ३ गायत्री; ७ ककुम्मती-गर्भोपरिष्टाद्बृहती ।। मन्त्र ७ ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः । हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१॥

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः। परेण दुत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२॥

अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३॥

व्याघ्रं दुत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि। आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥४॥

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति। पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५॥

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः। निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६॥

यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः। इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः); ६ अग्निः, सविता, सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—१--३; ५, ८ अनुष्टुप्; ४ पुरउष्णिक्; ६, ७ भुरिगनुष्टुप् ॥ मन्त्र ८।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे। तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः। उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥२॥

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति। ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥३॥

उच्छुष्मौषधीनां सारं ऋषभाणाम् । सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् । उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥५॥

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति । अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि । क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७॥

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च । अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८॥ [११४]

सूक्त ५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वृषभः, स्वापनम् ॥ छन्दः—१, ३–६ अनुष्टुप्; २भुरिगनुष्टुप्; ७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

विनियोगः—प्रेयसी के समीपस्थ जनों को निद्राभिभूत करना (कौ० ३६ । १-४)

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् । तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥१॥

न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन । स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥ २ ॥

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः । स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ३ ॥

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् । अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति । तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ५ ॥

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः । स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् । ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः ॥७॥ [११५]

सूक्त ६

ऋषिः—गरुत्मान् ।। देवता—१ ब्राह्मणः, २ द्यावापृथिवी, सप्त सिन्धवः, ३ सुपर्णः, ४—८ विषम् छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र ८ ।

विनियोगः – विष दूरी करण (कौ० २८ । १)

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः । स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥ १ ॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे । वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२॥

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ॥ ३ ॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः । अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥ ४ ॥

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः । अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५॥

अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् । उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥६॥

ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् । सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥७॥

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे । वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥८॥ [२।१]

सूक्त ७

ऋषिः—गरुत्मान् ॥ देवता—वनस्पतिः; ॥ छन्दः—१-३, ५-७ अनुष्टुप्; ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ मंत्र ७ ।

विनियोग—विष परिहरण (सायण)

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि । तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१॥

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् । अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥२॥

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीवस्पाकमुदारथिम् । क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३॥

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि । प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४॥

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि । तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥५॥

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत । प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥६॥

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे । वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७॥ [२।२]

सूक्त ८

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—राज्याभिषेकः; आपः, (मन्त्रोक्ता राजादयः) ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्; २, ४, ६ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्, ५ विराड् प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ७ ।

विनियोग—राज्यारोहण काल में अभिषेक व जप ?

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव । तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१॥

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा । आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः । महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४॥

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् । तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥५॥

अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः । यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६॥

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय । समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥ ७ ॥ [२१३]

सूक्त ९

ऋषिः— भृगुः ॥ देवता — त्रैककुदाञ्जनम् ॥ छन्दः—१, ४--१० अनुष्टुप्; २ ककुम्मत्यनुष्टुप्; ३ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मन्त्र १० ।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् । विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि । अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन । उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् । नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥

असन्मन्त्राद् दुःष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत । दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ॥६॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् । सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः । वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥ ८ ॥

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्य[ः ॥ ९ ॥

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे । उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन ॥ १० ॥ [२।४]

सूक्त १०

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — शङ्खमणिः, कृशनः ॥ छन्दः — १–५ अनुष्टुप्; ६ पथ्या पंक्तिः ७ पञ्चपदा परानुष्टुप्शाक्वरी ॥ मन्त्र ७ ।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि । स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥ १ ॥

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे । शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥२॥

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः । शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३॥

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः । स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४॥

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः । सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५॥

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे । रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥ [२।५]

सूक्त ११

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—अनड्वान् इन्द्ररूपः ॥ छन्दः—१, ४ जगती; २ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३, ५, ६ त्रिष्टुप्; ७ षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जगती निचृच्छक्वरी; ८-१२ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १२ ।

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् । अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥१॥

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो वि मिमीते अध्वनः । भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥२॥

इन्द्रो जातो मनुष्येऽष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः । सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३॥

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्यायथति पवमानः पुरस्तात् । पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४॥

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता । यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥५॥

येन देवाः स्वऽरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६॥

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् । विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत । सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥७॥

मध्यमेतदनडुहो यत्रै वह आहितः। एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥८॥

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः। प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्। श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः। तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि। दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥१२॥ [३।१]

सूक्त १२

ऋषि—ऋभुः ॥ देवता – रोहिणी वनस्पतिः ॥ छन्दः—१ त्रिपदा गायत्री, २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री,' बृहती। मन्त्र १२ ॥

विनि०—शस्त्रादि से छिन्न होने पर बहते खून को रोकने और क्षतांग को स्वस्थ करने के लिये प्रातःकाल इस सूक्त से अभिमंत्रित करके क्वथित लाक्षोदक से अवसेचन करे और लाक्षौषध लेपन करे। मन्त्राभिमंत्रित दूध पिलाये (कौ० २८।५-६)

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी। रोहयेदमरुन्धति ॥१॥

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि। धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२॥

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः। सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु । असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४॥

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् । असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५॥

स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः । प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान । ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥७॥ [३।२]

सूक्त १३

ऋषिः—शंतातिः ।। देवता—विश्वेदेवाः ।। छन्दः—अनुष्टुप् । मन्त्र ७ ।।

विनियोग—उपनयन के बाद आचार्य आयुर्वृद्धयर्थ माणवक को स्पर्श करे । यज्ञ में रोगी यजमान को स्वस्थ करने में भी काम आता है (कौ० ५८।३।११)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः । दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः । त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः । त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः । दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥

अ॒यं मे॒ हस्तो॒ भग॑वान॒यं मे॒ भग॑वत्तरः । अ॒यं मे॑ वि॒श्वभे॑षजो॒ऽयं शि॒वाभि॑मर्शनः ॥६॥

हस्ता॑भ्यां॒ दश॑शाखाभ्यां जि॒ह्वा वा॒चः पु॒रोग॒वी । अ॒ना॒म॒यि॒त्नुभ्यां॒ हस्ता॑भ्यां॒ ताभ्यां॑ त्वा॒भि मृ॑शामसि ॥७॥ [३।३]

सूक्त १४

ऋषिः—भृगुः ॥ देवताः—अग्निः, आज्यम् ॥ छन्दः—१,५,६ त्रिष्टुप्; २,४ अनुष्टुप्; ३ प्रस्तार पङ्क्तिः; ७,९ जगती; ८ पञ्चपदाऽतिशक्वरी ॥ मन्त्र ९ ।

अ॒जो ह्य१॒ग्नेरज॑निष्ट॒ शोका॒त् सो अ॑पश्यज्जनि॒तार॒मग्रे॑ । तेन॑ दे॒वा दे॒वता॒मग्र॑ आय॒न् तेन॒ रोहा॑न् रुरुहु॒र्मेध्या॑सः ॥१॥

क्रम॑ध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्या॒न् हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः । दि॒वस्पृ॒ष्ठं स्व॑१॒र्गत्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राद्ध्वम् ॥२॥

पृ॒ष्ठात् पृ॑थि॒व्या अ॒हम॒न्तरि॑क्ष॒मारु॑हम॒न्तरि॑क्षा॒द् दिव॒मारु॑हम् । दि॒वो नाक॑स्य पृ॒ष्ठात् स्व१॒र्ज्योति॑रगाम॒हम् ॥३॥

स्व१॒र्यन्तो॒ नाపే॑क्षन्त॒ आ द्यां रो॑हन्ति॒ रोद॑सी । य॒ज्ञं ये वि॒श्वतो॑धारं॒ सुवि॑द्वांसो वितेनि॒रे ॥४॥

अग्ने॒ प्रेहि॑ प्रथ॒मो दे॒वता॑नां॒ चक्षु॑र्दे॒वाना॑मु॒त मानु॑षाणाम् । इय॑क्षमाणा॒ भृगु॑भिः स॒जोषा॒ः स्व॑१॒र्यन्तु॒ यज॑मानाः स्व॒स्ति ॥५॥

अ॒जम॑नज्मि॒ पय॑सा घृ॒तेन॑ दि॒व्यं सु॑प॒र्णं प॑य॒सं बृ॒हन्त॑म् । तेन॑ गेष्म सुकृ॒तस्य॑ लो॒कं स्व॑१॒रा॒रोह॑न्तो अ॒भि नाक॑मुत्त॒मम् ॥६॥

पञ्चौ॑दनं प॒ञ्चभि॑र॒ङ्गुलि॑भि॒र्दर्व्योद्ध॑र प॒ञ्चधै॒तमो॑द॒नम् । प्राच्यां॑ दि॒शि शिरो॑ अ॒जस्य॑ धेहि॒ दक्षि॑णायां दि॒शि दक्षि॑णं धेहि पा॒र्श्वम् ॥७॥

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्य
[मन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥८॥

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वै रङ्गैः सम्भृतं विश्वरूपम् । स उत्
तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥९॥ [३।४]

सूक्त १५

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—१ दिशः; २, ३ वीरुधः; ४ मारुतपर्जन्यौ; ५-१० मरुतः, ११ प्रजापतिः, स्तनयित्नुः, १२ वरुणः, १३-१५ मण्डूकाः, (१५ पितरः) १६ वातः ।। छन्दः—१, २, ५ विराड् जगती; ३, ६, ८, ११, १४, १६ त्रिष्टुप् ४ विराट् पुरस्ताद्बृहती; ७, १३ अनुष्टुप्; ९ पथ्या पङ्क्तिः; १० भुरिक् त्रिष्टुप् १२ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा भुरिक् त्रिष्टुप्; १५ शङ्कुमत्यनुष्टुप् ।। मंत्र १६ ।

विनि०---वृष्टि के लिये होमादि कर्मानुष्ठान

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२॥

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् । वर्षस्य
सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३॥

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् । सर्गा
वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ । महऋषभस्य
नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि । त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६॥

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत । मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥७॥

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः । मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८॥

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत । मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव । स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०॥

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति । प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११॥

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज । वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३॥

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि । मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४॥

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि । वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५॥

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः। तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६॥ [३।५]

सूक्त १६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम् ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २-४ ६ त्रिष्टुप्; ५ भुरिक् त्रिष्टुप्; ७ जगती; ८ त्रिपान्महाबृहती; ६ विराण्नाम त्रिपाद् गायत्री ॥ मंत्र ६।

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति। य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्। द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥२॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता। उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः। दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः। छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः। आस्तां जाल्म उदरं स्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥

यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्य॒ः । यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र । तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥९॥ [४।१]

सूक्त १७

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता:—अपामार्गो वनस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् । मन्त्र ८ ॥

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे । चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥१॥

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् । सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥२॥

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे । या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३॥

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते । आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥

दौःष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्य॒ः । दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५॥

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥६॥

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥७॥

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी । तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥८॥

सूक्त १८

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता—अपामार्गो वनस्पतिः ॥ छन्दः—१-५, ७, ८ अनुष्टुप्, ६ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप् । मन्त्र ८ ॥

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती । कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः ॥१॥

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् । वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२॥

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति । अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३॥

सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम् । प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥५॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥६॥

अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः । अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७॥

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

सूक्त १९

ऋषिःशुक्रः ।। देवता—अपामार्गो वनस्पतिः ।। छन्दः१, ३—८ अनुष्टुप; २ पथ्या पङ्क्तिः ।। मंत्र ८ ।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत । उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥१॥

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन । सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२॥

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् । उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥३॥

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत । ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता । प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५॥

असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः । तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६॥

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् । सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७॥

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा । इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८॥

[४।४]

सूक्त २०

ऋषिः—मातृनामा ॥ देवता—औषधिः ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्; २-८ अनुष्टुप्; ९ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ९ ।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति । दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् । त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२॥

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका । सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३॥

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधत् । तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः । अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः । पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः । वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् । तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥८॥

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति । भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९॥ [४।५]

सूक्त २१

ऋषिः ब्रह्मा ॥ देवता—गावः ॥ छन्दः १. ५-७ त्रिष्टुप्, २-४ जगती । मंत्र ७

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे । प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति । भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति । देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि । उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः । इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः । मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७॥ [५।१]

सूक्त २२

ऋषिः-वसिष्ठः, अथर्वा वा ॥ देवता-इन्द्रः, क्षत्रियो राजा ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ७ ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् । निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१॥

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य । वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥२॥

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा । अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू । अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४॥

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते । यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५॥

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६॥

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् । एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७॥ [५।२]

—:०:—

सूक्त २३

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपंक्तिः ॥ मन्त्र ७ ।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् । एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२॥

यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् । अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् । हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः । येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् । येन देवाः स्व१राभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् । स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥ [५।३]

—:०:—

सूक्त २४

ऋषिः—मृगारः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१ शक्वरीगर्भा पुरःशक्वरी २–७ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ७ ।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१॥

य उग्रीणामुग्रबाहुर्युयों दानवानां बलमारुरोज । येन जिताः
सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् । यस्याध्वरः
सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे । यस्मै
शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ । यस्मिन्नर्कः
शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबद्धम् । येनोद्यतो
वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

यः संग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥ [५।४]

—:०:—

सूक्त २५

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—वायुसवितारौ ॥ छन्दः—१, २, ४–६ त्रिष्टुप्, ३ अतिशक्वरी, ७ पथ्याबृहती ॥ मन्त्र ७ ॥

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः । यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

ययोः सङ्ख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे । ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो । युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् । सं ह्यू१र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् । अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५॥

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः । अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् । स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥ [५।५]

—:०:—

सूक्त २६

ऋषिः—मृगारः। देवता—द्यावापृथिवी। छन्दः—१—पुरोऽष्टिजगती, २–६ त्रिष्टुप्, ७ शाक्वरगर्भा मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्। मन्त्र ७।

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि। प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान्। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति। द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

यन्मेदमभिशोचति येन येन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्। स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥ [६।१]

—:०:—

सूक्त २७

ऋषिः—मृगारः । देवता—मरुतः । छन्दः—त्रिष्टुप् । मन्त्र ७ ।

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु । आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१॥

उत्सम॒क्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु । पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ । शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥

अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति । ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति । ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५ ॥

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार । यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् । स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ७ ॥ [६।२]

—:०:—

सूक्त २८

ऋषिः - मृगारः ॥ देवताः—भवाशर्वौ ॥ छन्दः—१ अतिजागतगर्भाभुरिक् त्रिष्टुप् २--७ त्रिष्टुप् । मंत्र ७ ।

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ । यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु । यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु । यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी । स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥ [६।३]

—:०:—

सूक्त २९

ऋषिः—मृगारः ।। देवता—मित्रावरुणौ ।। छन्दः—१–६ त्रिष्टुप्, ७ शक्वरीगर्भा-ऽतिजगती ।। मन्त्र ७ ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु । यौ गच्छथो
नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् । यौ
कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् । यौ विमदमवथ
सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् । यौ
कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ । यौ
गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् । स्तौमि
मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ७ ॥ [६।४]

सूक्त ३०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् । छन्दः—१–५, ७, ८ त्रिष्टुप्; ६ जगती । मन्त्र ८ ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् । तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥ २ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् । यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ३ ॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् । अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥ ४ ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ । अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् । अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्याउ यजमानाय सुन्वते ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा । परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥ ८ ॥ [६।५]

सूक्त ३१

ऋषिः—ब्रह्मास्कन्दः ॥ देवता—मन्युः ॥ छन्दः—१,३ त्रिष्टुप्, २,४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५-७ जगती ॥ मन्त्र ७ ।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् । तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि । हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् । उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥ ३ ॥

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि । अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥ ४ ॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह । प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥ ५ ॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् । क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येऽधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ ६ ॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः । भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥ ७ ॥ [७।१]

—:०:—

सूक्त ३२

ऋषि:—ब्रह्मास्कन्द: ।। देवता—मन्यु: ।। छन्द:—१ जगती: २—७ त्रिष्टुप् । मन्त्र ७ ।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओज: पुष्यति विश्वमानुषक् । साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा: । मन्युं विश ईडते मानुषीर्या: पाहि नो मन्यो तपसा सजोषा: ॥ २ ॥

अभी हि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् । अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं न: ॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजा: स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाह: । विश्वचर्षणि: सहुरि: सहीयानस्मास्वोज: पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥

अभाग: सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेत: । तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥ ५ ॥

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीन: सहुरे विश्वदावन् । मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापे: ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि । जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥ [७।२]

—:०:—

सूक्त ३३

ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—अग्निः । छन्दः—गायत्री । मन्त्र ८ ।

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घमग्ने॑ शुशु॒ग्ध्या र॒यिम् । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ १ ॥

सु॒क्षे॒त्रि॒या सु॑गातु॒या व॑सू॒या च॑ यजामहे । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ २ ॥

प्र यद् भन्दि॑ष्ठ एषां॒ प्रा॒स्माका॑सश्च सू॒रयः॑ । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥३॥

प्र यत् ते॑ अग्ने सू॒रयो॒ जाये॑महि॒ प्र ते॑ व॒यम् । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ४ ॥

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑ । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ५ ॥

त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ६ ॥

द्विषो॑ नो विश्वतोमु॒खाति॑ ना॒वेव॑ पारय । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ७ ॥

स नः॒ सिन्धु॑मिव ना॒वाति॑ पर्षा स्व॒स्तये॑ । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥ ८ ॥

सूक्त ३४

ऋषिः—अथर्वा । देवता—ब्रह्मौदनम् । छन्दः—१-३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५ सप्तपदा कृतिः ६ पञ्चपदाऽतिशक्वरी, ७ पञ्चपदा भुरिक् शक्वरी, ८ जगती । मंत्र ८ ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य । छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् । नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन । आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः । रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥ ४ ॥

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश । आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ५ ॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ६ ॥

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ७ ॥

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणँ लोकजितँ स्वर्गम् । स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥ ८ ॥ [७१४]

सूक्त ३५

ऋषिः-प्रजापतिः । देवता—अतिमृत्युः । छन्दः---१, २, ४-७ त्रिष्टुप् ३ भुरिग्जगती । मंत्र ७ ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् । यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ १ ॥

येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण । यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ २ ॥

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन । यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ३ ॥

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः । अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥

यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति । ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५॥

यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव। यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६॥

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु। ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७॥ [७।५]

सूक्त ३६

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—सत्यौजा अग्निः ॥ छन्दः—१-८, १० अनुष्टुप्; ९ भुरिगनुष्टुप् ॥ मन्त्र १०।

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा। यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१॥

यो नो दिप्साददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति। वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२॥

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशे[ऽमावास्ये]। क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३॥

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे। सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४॥

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम्। नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५॥

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव। श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७॥

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव । तानहं मन्ये दुर्हितांञ्जने अल्पशयूनिव ॥९॥

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या । मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०॥ [८।१]

सूक्त ३७

ऋषिः—बादरायणिः ।। देवता—१, २, ६, १० ओषधिः (अजशृङ्गी), ३-५ अप्सरसः, ७-९, ११, १२ गन्धर्वाप्सरसः ।। छन्द—१, २, ४, ६, ८-१० अनुष्टुप्; ३ षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तार-पंक्तिः; ७ परोष्णिक्; ११ षट्पदा जगती, १२ निचृदनुष्टुप् । मंत्र १२ ।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे । त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे । अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२॥

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् । गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी । तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्या॑वती। अजशृङ्ग्य॑राटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृ॑षतु ॥६॥

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः। भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः। ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृ॑षतु ॥८॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः। ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृ॑षतु ॥९॥

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्। पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१०॥

श्वैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः। प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्या॑वता ॥११॥

जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्। अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२॥८[२]॥

सूक्त ३८

ऋषि;—बादरायणिः ॥ देवता १-४ अप्सराः; ५-७ वाजिनीवान् ऋषभः ॥ छन्दः—१, २, ४ अनुष्टुप्; ३ षट्पदा जगती; ५ भुरिगत्यष्टिः; ६ त्रिष्टुप्, पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती ॥ मंत्र ७ ।

उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्। ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१॥

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् । ग्लहं कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥२॥

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् । सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया । सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥३॥

या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती । आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४॥

सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति । यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्यैति रक्षन् । स न ऐतु होममिमं जुषाणो३न्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥५॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् । इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् । अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः । यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥७॥ [८।२]

सूक्त ३९

ऋषिः—१-८ अङ्गिराः; ९, १० ब्रह्मा ॥ देवताः—१, २ पृथिव्यग्नी; ३, ४ वाय्वन्तरिक्षे; ५, ६ दिवादित्यौ; ७, ८ दिक्चन्द्रमसौ; ९, १० जातवेदसोऽग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, त्रिपदा महाबृहती; २, ४, ६, ८ संस्तारपंक्तिः; ९, १० त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् । यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१॥

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२॥

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् । यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३॥

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः । सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४॥

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् । यथा दिव्यादित्यय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५॥

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६॥

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् । यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७॥

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् । आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ । नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥९॥

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । सप्तस्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१०॥ [८।४]

सूक्त ४०

ऋषिः—शुक्रः ।। देवता:—जातवेदः; १ अग्नि; २ यमः; ३ वरुणः; ४ सोमः; ५ भूमिः; ६ वायुः; ७ सूर्यः; ८ ब्रह्म; ।। छन्दः—१, ३-७ त्रिष्टुप्; २ जगती; ८ पुरोऽतिशक्वरीपादयुग् जगती ।। मन्त्र ८ ।

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२॥

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् । वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३॥

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥

ये३ऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥

ये३ऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥

ये दि॒शाम॑न्तर्दे॒शेभ्यो॑ जु॒ह्व॑ति जातवेदः॒ सर्वा॑भ्यो दि॒ग्भ्योऽभि॒दास॑न्त्य॒स्मान्। ब्रह्म॒र्त्वा ते परा॑ञ्चो व्यथन्तां प्र॒त्यगे॑नान् प्रतिस॒रेण॑ हन्मि ॥८॥ [८।५]

इति चतुर्थं काण्डं समाप्तम्

* ॐ *

अथर्ववेद-संहिता

अथ पञ्चमं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—बृहद्दिवोऽथर्वा ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१ पराबृहती त्रिष्टुप्; २-६, ८ त्रिष्टुप्; ७ विराट् त्रिष्टुप्; ९ षट्पदात्यष्टिः ॥ मंत्र ९ ।

ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि । धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥

यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः । अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥ ३ ॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् । कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥ ४ ॥

तद् षु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि। यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥ ५ ॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्। आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६ ॥

उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्व१स्तत् सुमद्गुः। उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥ ७ ॥

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडिज्ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये। दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥ ८ ॥

अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर। अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम्। कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥ ९ ॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—बृहद्दिवोऽथर्वा ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१-८ त्रिष्टुप्; ९ भुरिक परातिजागता त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ९।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ १ ॥

(ऋ० १०।१२०।१)

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति। अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः । ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि । चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे । आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ६ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् । आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः । महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ८ ॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव । स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—बृहद्दिवोऽथर्वा । देवता—१, २ अग्निः, ३, ४, देवाः; ५, द्रविणोदादयः; ६, ६, १० विश्वेदेवाः; ७ सोमाः; ८, ११ इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३-६, ११ त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिष्टुप्; १० विराड् जगती ॥ मंत्र ११ ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम । मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ १ ॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः । अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥ २ ॥

ममं देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः । ममान्तरिक्षमु-
रुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥ ३ ॥

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु । एनो मा
नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥ ४ ॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः । दैवा
होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥ ५ ॥

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् । मा नो
विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥६ ॥

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥ ७ ॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु । स नः
प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥ ८ ॥

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः । आदित्या
रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥ ९ ॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥ १० ॥

अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः । इमं
नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥ ११ ॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—कुष्ठस्तक्मनाशनः ॥ छन्दः—१-४, ७-६ अनुष्टुप् ५ भुरिगनुष्टुप्; ६ गायत्री; १० उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप् ॥

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः । कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि । धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥ २ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४ ॥

हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया । नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥ ५ ॥

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः । स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥ ७ ॥

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् । तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥ ८ ॥

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता। यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥ ९ ॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोऽरपः। कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥ १० ॥ [१।४]

सूक्त ५

ऋषिः—अथर्वा। देवता—लाक्षा॥ छन्दः—अनुष्टप्॥ मंत्र ९।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः। सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥ १ ॥

यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम्। भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥ २ ॥

वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला। जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥ ३ ॥

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम्। तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥ ४ ॥

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद् धवात्। भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥ ५ ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे। रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥ ६ ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे। अपामसि स्वसा लाक्षे वातो ह्यात्मा बभूव ते ॥ ७ ॥

सि॒ला॒ची नाम॑ कानी॒नोऽज॑बभ्रु पि॒ता तव॑। अश्वो॑ य॒मस्य॒ यः श्या॒वस्तस्य॑ हा॒स्नास्यु॑क्षि॒ता ॥ ८ ॥

अश्व॑स्यास्नः सम्प॑तिता॒ सा वृ॒क्षाँ अ॒भि सि॑ष्यदे। स॒रा प॑त॒त्रिणी॑ भू॒त्वा सा न॒ एह्य॑रुन्धति ॥ ९ ॥ [११५]

सूक्त ६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ ब्रह्म, आदित्यः, २ कर्माणि; ३, ४ रुद्रगणाः; ५-८ सोमारुद्रौ; ६ हेतिः; १० अग्निः; ११—१४ सर्वात्मको रुद्रः (?) ॥ छन्दः—१,६ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ जगती; ४ अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती; ५-७ त्रिपदा विराण्नामगायत्री; ८ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; १० प्रस्तारपङ्क्तिः; ११-१२ पङ्क्तिः; १४ स्वराड्पङ्क्तिः ॥

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द् वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः। स बु॒ध्न्या॑ उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः॑ ॥ १ ॥

अना॑प्ता ये वः॑ प्रथ॒मा यानि॒ कर्मा॑णि चक्रि॒रे। वी॒रान् नो॒ अत्र॒ मा द॑भ॒न् तद् व॑ ए॒तत् पु॒रो द॑धे ॥ २ ॥

स॒हस्र॑धार ए॒व ते सम॑स्वरन् दि॒वो नाके॒ मधु॑जिह्वा अस॒श्चतः॑। तस्य॒ स्पशो॒ न नि मि॑षन्ति॒ भूर्ण॑यः प॒देप॑दे पा॒शिनः॑ सन्ति॒ सेत॑वे ॥ ३ ॥

पर्यू॒ षु प्र ध॑न्वा॒ वाज॑सातये॒ परि॑ वृ॒त्राणि॑ स॒क्षणिः॑। द्वि॒षस्तद॒ध्य॑र्ण॒वेने॑यसे सनिस्र॒सो नामा॑सि त्रयोद॒शो मास॒ इन्द्र॑स्य गृ॒हः ॥ ४ ॥

न्वे॒३॒॑तेना॑रात्सीरसौ॒ स्वाहा॑। ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सु॒शेवौ॒ सोमा॑रुद्राावि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ५ ॥

अवै॒तेना॑रात्सीरस॒ौ स्वाहा॑ । ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सु॒शेवौ॒ सोमा॑रुद्रा-
वि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ६ ॥

अपै॒तेना॑रात्सीरस॒ौ स्वाहा॑ । ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सु॒शेवौ॒ सोमा॑रुद्रा-
वि॒ह सु मृ॑डतं नः ॥ ७ ॥

मु॒मु॒क्तम॒स्मान्दु॑रि॒ताद॑व॒द्याज्जु॒षेथां॑ य॒ज्ञम॒मृत॑म॒स्मासु॑ धत्तम् ॥ ८ ॥

चक्षु॑षो हे॒ते मन॑सो हे॒ते ब्रह्म॑णो हे॒ते तप॑सश्च हेते । मे॒न्या मे॒निर॑स्य-
मे॒नय॒स्ते सं॑न्तु॒ ये॒३॒स्माँ अ॑भ्यघा॒यन्ति ॥ ९ ॥

यो॒३॒स्मांश्चक्षु॑षा मन॑सा चित्त्याकू॑त्या च॒ यो अ॑घा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
त्वं तान॑ग्ने मे॒न्याम॒ेनीन् कृ॒णु॒ स्वाहा॑ ॥ १० ॥

इन्द्र॑स्य गृ॒होऽसि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः ।
सर्व॑पूरुष॒ः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ ११ ॥

इन्द्र॑स्य॒ शर्मा॑सि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः । सर्व॑-
पूरुष॒ः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १२ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वर्मा॑सि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये तं त्वा॒ प्र विशा॑मि॒ सर्व॑गुः
इणसर्व॑पूरुष॒ः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १३ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वरू॑थमसि । तं त्वा॒ प्र प॑द्ये तं त्वा॒ प्र विशा॑मि॒ सर्व॑गुः
सर्व॑पूरुष॒ः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १४ ॥　　[२।१]

सूक्त ७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१-३, ६-१० अरातयः; ४,५ सरस्वती ॥ छन्दः—१ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः; २, ३, ५, ७-१० अनुष्टुप्; ४ पथ्या बृहती; ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् । नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥ १ ॥

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् । नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २ ॥

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् । अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३ ॥

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे । वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥ ४ ॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा । श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥

मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि । सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥ ६ ॥

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि । वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥ ७ ॥

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया संचसे जनम् । अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥ ८ ॥

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे । तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥ ९ ॥

हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही । तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥ [२।२]

सूक्त ८

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—१, २, अग्निः; ३ विश्वे देवाः; ४-९ इन्द्रः ।। छन्दः—१, ५, ८ अनुष्टुप्; २ षट्पदा जगती; ३, ४ भुरिक् पथ्यापंक्तिः; ६ आस्तारपङ्क्तिः; ७ द्वयुष्णिगगर्भा पथ्या पङ्क्तिः; ९ षट्पदा द्वयनुष्टुब्गर्भा जगती ।।

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह । अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु । इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे । तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् ॥ २ ॥

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति । मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥ ३ ॥

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत । अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥ ४ ॥

यमुमी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये । इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ५ ॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे । तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ ६ ॥

यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् । त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥ ७ ॥

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् । कृण्वे३हमधरांस्तथामूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव अनु त्वेन्द्रा रंभामहे स्याम सुमतौ तव ॥ ९ ॥ [२।३]

सूक्त ९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वास्तोष्पतिः ॥ छन्दः—१, ५, दैवी बृहती, २, ६ दैवी त्रिष्टुप्, ३, ४ दैवी जगती; ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती; ८ पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा (?, पञ्चपदा) ऽतिजगती । मंत्र ८ ।

दिवे स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥ दिवे स्वाहा ॥५॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥६॥

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो३न्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ।
॥ ७ ॥

उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्। आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा। आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥ [२।४]

सूक्त १०

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वास्तोष्पतिः ॥ छन्दः—१-६ यवमध्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमध्या ककुप्, ८ पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिश्चतुष्पदाऽतिजगती। मंत्र ८।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्यां दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ १ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ २ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्यां दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ ३ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ ४ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवायां दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ ५ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वायां दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ ६ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ । सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् । सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८॥ [२।५]

सूक्त ११

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २, ४, ५, ७-१० त्रिष्टुप; ३ पङ्क्तिः; ६ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; ११ षट्पदाऽत्यष्टिः । मंत्र ११ ।

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः । पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१॥

न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे । केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २ ॥

सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः । न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् । त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ४ ॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते । किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् । तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥ ६ ॥

त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि । मो षु पणीँरभ्ये-ऽतावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥ ७ ॥

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि । स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८॥

आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु । देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥

समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा । ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥ १० ॥

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः । अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् । तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥ [३।१]

सूक्त १२

ऋषि—अङ्गिराः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः–१, २, ४-११ त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ १ ॥

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २ ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥ ३ ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ ४ ॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ५ ॥
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ । दिव्ये
योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै । प्रचोद-
यन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती । तिस्रो
देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥ ८ ॥
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा । तमद्य
होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ९ ॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि । वनस्पतिः
शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥
सद्यो जातो व्य[मिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः । अस्य
होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥ [३।२]

सूक्त १३

ऋषिः—गरुत्मान् ॥ देवता—तक्षकः ॥ छन्दः—१, ३ जगती; २ आस्तारपंक्तिः; ४; ७, ८, अनुष्टुप् ५, त्रिष्टुप्; ६ पथ्या पंक्तिः; ९ भुरिग्जगती; १०,११ निचृद्गायत्री ॥ मंत्र ११ ।

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥ १ ॥

यत् ते अपोदकं विषं तत् तं एतास्वग्रभम्। गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥ २ ॥

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते। अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमसइव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्। अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥ ४ ॥

कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः। मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥ ५ ॥

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च। सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथांइव ॥ ६ ॥

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च। विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥

उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या। प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥

कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका। याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥ ९ ॥

ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम्। ताबुवेनारसं विषम् ॥१०॥

तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम्। तस्तुवेनारसं विषम्। ॥ ११ ॥ [३।३]

सूक्त १४

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता—वनस्पतिः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ९, अनुष्टुप्; ३, ५, १२ भुरिगनुष्टुप्; ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप्; १० निचृद् बृहती; ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्; १३ स्वराडनुष्टुप् ॥ मंत्र १३ ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा । दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि । अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥ २ ॥

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः । कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥ ३ ॥

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय । समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ४ ॥

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते । सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ ५ ॥

यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने । तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥ ६ ॥

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता । तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥ ७ ॥

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व । पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥ ८ ॥

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि। न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥ ९ ॥

पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश। बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥ १० ॥

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव। कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥ ११ ॥

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति। सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ १२ ॥

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्। सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ १३ ॥ [३।४]

सूक्त १५

ऋषि—विश्वामित्रः ॥ देवता—मधुला ओषधिः ॥ छन्दः—१-३, १०, ११ अनुष्टुप्; ४ पुरस्ताद् बृहती; ५, ७-८ भुरिगनुष्टुप् ॥

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १ ॥

द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ २ ॥

तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ३ ॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ४ ॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ५ ॥

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६ ॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ७ ॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ८ ॥

नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ९ ॥

दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १० ॥

शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे। ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ११ ॥ [३।५]

सूक्त १६

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—एकवृषः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७—१० द्विपदा साम्न्युष्णिक्; २, ३, ६ द्विपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ११ द्विपदाऽऽसुरी गायत्री ॥ मंत्र ११ ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥४ ॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥

यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥ ११ ॥ [४।१]

सूक्त १७

ऋषि: -- मयोभूः। देवता--ब्रह्मजाया॥ छन्दः-१-६ त्रिष्टुप्, ७-१८अनुष्टुप्। मंत्र १८।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा। वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १ ॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः। अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २ ॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत्। न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥

यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम्। सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्। तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५ ॥

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते। वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ ७ ॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः। ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः। तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः। राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्। ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥ ११ ॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १२ ॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १३ ॥

नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः। यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १४ ॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १५ ॥

नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १६ ॥

नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते । यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १७ ॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् । विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ १८ ॥ [४।२]

सूक्त १९

ऋषिः—मयोभूः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—१–३, ६, ७, १०-१२, १४, १५ अनुष्टुप्; ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५, ८, ९, १३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १५ ।

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे । मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥ १ ॥

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः । स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा । सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥ ३ ॥

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् । यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ ४ ॥

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्। सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ ५ ॥

न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ऽग्निः प्रियतनोरिव। सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥ ६ ॥

शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन्। अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥ ७ ॥

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः। तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥ ८ ॥

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा। अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत। ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥ १० ॥

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत्। ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्य१धूनुत। प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ १२ ॥

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्। यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३ ॥

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते। हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥ १४ ॥

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते । सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥ १५ ॥ [४।३]

सूक्त १९

ऋषि:—मयोभूः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—१, ३-६, ८-१५ अनुष्टुप्; २ विराट् पुरस्ताद्बृहती:; ७, विराडुपरिष्टाद्बृहती ॥ मंत्र १५ ।

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् । भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥ १ ॥

ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः । पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे । अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥ ३ ॥

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे । तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते । क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति । परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः । द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥ ७ ॥

तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् । ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥

तं वृक्षा अप सेधन्ति च्छायां नो मोप गा इति । यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ ९ ॥

विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् । न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥ १० ॥

नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्य1धूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ ११ ॥

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्य1ं पदयोपनीम् । तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥

अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥

येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥ १५ ॥ [४१४]

सूक्त २०

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वानस्पत्यो दुन्दुभिः । छन्दः—१ जगती; २-१२ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १२ ।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः । वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥ २ ॥
वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३॥
संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः । ॥ ४ ॥
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् । ॥ ५ ॥
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥ ६ ॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥ ७ ॥
धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥ ८ ॥
संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥ ९ ॥
श्रेयः केतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१०॥
शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् । वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥ ११ ॥

अ॒च्यु॒त॒च्युत् स॒मदो॒ गमि॑ष्ठो॒ मृधो॒ जेता॑ पुरए॒ताया॒ध्यः इन्द्रे॑ण गु॒प्तो वि॒दथा॑ नि॒चिक्य॑द्धृ॒द्द्योत॑नो द्वि॒षतां या॑हि॒ शीभ॑म् ॥१२॥ [४।५]

सूक्त २१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता – वानस्पत्यो दुन्दुभिः; १०-१२ आदित्यादयः ॥ छन्दः—१ ४, ५ पथ्या पङ्क्तिः; २, ३, ७-१० अनुष्टुप्; ६ जगती; ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; १२ त्रिपदा यवमध्या गायत्री ॥ मन्त्र १२ ।

विहृ॑दयं वैमन॒स्यं वदा॒मित्रे॑षु दुन्दुभे । वि॒द्वे॒षं कश्म॑शं भ॒यम॒मित्रे॑षु॒ नि द॑ध्म॒स्यवै॑नान् दुन्दुभे जहि ॥१॥

उ॒द्वेप॑माना॒ मन॑सा॒ चक्षु॑षा॒ हृद॑येन च । धाव॑न्तु॒ बिभ्य॑तो॒ऽमित्रा॑ः प्र॒त्रासे॑नाज्ये॑ हु॒ते ॥ २ ॥

वा॒न॒स्प॒त्यः संभृ॑त उ॒स्रिया॑भिर्वि॒श्वगो॑त्र्यः । प्र॒त्रास॑म॒मित्रे॑भ्यो व॒दाज्ये॑ना॒भिघा॑रितः ॥ ३ ॥

यथा॑ मृ॒गाः सं॑वि॒जन्त॑ आर॒ण्याः पुरु॑षा॒दधि॑ । ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि॑ मोहय ॥ ४ ॥

यथा॒ वृका॑दजा॒वयो॒ धाव॑न्ति ब॒हु बिभ्य॑तीः । ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि मोहय ॥ ५ ॥

यथा॑ श्ये॒नात् प॑त॒त्रिणः॑ सं॑वि॒जन्ते॒ अह॑र्दिवि सि॒हस्य॑ स्तन॒थोर्यथा॑ । ए॒वा त्वं दु॑न्दुभे॒ऽमित्रा॑न॒भि क्र॑न्द॒ प्र त्रा॑स॒याथो॑ चि॒त्तानि मोहय ॥६॥

प॒रा॒मित्रा॑न् दु॒न्दु॒भिना॑ हरि॒णस्या॒जिने॑न च । सर्वे॑ दे॒वा अ॑तित्रस॒न् ये सं॑ग्राम॒स्येश॑ते ॥ ७ ॥

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह । तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥ ८ ॥

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः । सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥ ९ ॥

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत । पत्सङ्गिनीरा संजन्तु विगते बाहुवीर्ये ॥१०॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् । सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥ ११ ॥

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥ १२ ॥ [४ । ६]

सूक्त २२

ऋषि- भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—तक्मनाशनः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३, ४, ६-१४ अनुष्टुप्; ५ विराट् पथ्या बृहती ॥

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः । वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥ १ ॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् । अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥ २ ॥

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥ ३ ॥

अधराञ्चं प्र हिंणोमि नमः कृत्वा तक्मने । शकम्भरस्यं मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥

ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः । यावंज्जातस्तक्मंस्तावांनसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥ ५ ॥

तक्मन् व्याल वि गंद व्यङ्ग भूरिं यावय । दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥ ६ ॥

तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् । शूद्रामिच्छ प्रफुर्व्यं१ तां तंक्मन् वीव धूनुहि ॥ ७ ॥

महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्यं । प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥ ८ ॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः । अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥ ९ ॥

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः । भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥ १० ॥

मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् । मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वां तक्मन्नुप ब्रुवे ॥ ११ ॥

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह । पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥ १२ ॥

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्। तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥ १३ ॥

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः। प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥ १४ ॥ [५।१]

सूक्त २३

ऋषिः—काण्वः ॥ देवता —इन्द्रादयः ॥ छन्दः—१-१२ अनुष्टुप्; १३विराडनुष्टुप् ॥ मंत्र १३।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती। ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥ १ ॥

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि। हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥ २ ॥

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति। दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥ ३ ॥

सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ। बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥

ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः। ये के च विश्वरूपा-स्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥ ५ ॥

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥ ६ ॥

येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः। दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥

हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत। सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥ ८ ॥

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्ठीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ ९ ॥

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥ १० ॥

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हत-भ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥ १२ ॥

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥ १३ ॥ [५।२]

सूक्त २४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवताः—१ सविता; २ अग्निः; द्यावापृथिवी; ४ वरुणः; ५ मित्रावरुणौ; ६ मरुतः; ७ सोमः; ८ वायुः ९ सूर्यः; १० चन्द्रमाः; ११ इन्द्रः; १२ मरुतां पिता; १३ मृत्युः; १४ यमः; १५ पितरः; १६ ततः; १७ ततामहाः ॥ छन्दः—१-१०, १२-१४ अतिशक्वरी; ११ शक्वरी; १५, १६ त्रिपदा (?) भुरिग्जगती; १७ त्रिपदा (?) विराट् शक्वरी ॥ मंत्र १७।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्याम-स्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १ ॥

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्म-ण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्या-माशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ २ ॥

द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्याम-स्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥

मित्रावरुणौ वृष्ट्या अधिपती तौ मावताम् । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्याम-स्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ५ ॥

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्याम स्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ७ ॥

वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ९ ॥

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १० ॥

इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १२ ॥

मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १३ ॥

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामा-शिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १४ ॥

पितरः परे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधाया-मस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १५ ॥

तता अवरे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधा-यामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १६ ॥

ततस्ततामहास्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामा-शिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १७ ॥ [५।३]

सूक्त २५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—योनिः, गर्भः, पृथिव्यादयः ॥ छन्दः—१-१२ अनुष्टुप्, १३ विराट् पुरस्ताद्बृहती ॥ मन्त्र १३ ।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् । शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः । गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती । यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ७ ॥

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् । वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् । अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १० ॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ ११ ॥

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १२ ॥

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १३ ॥ [५। ४]

सूक्त २६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता – १ अग्निः; २ सविता; ३; ११ इन्द्रः; ४ निविदः; ५ मरुतः; ६ अदितिः; ७ विष्णुः; ८ त्वष्टा; ९ भगः; १० सोमः; १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः ॥ छन्दः - १, ५ द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक्; २, ४, ६-८, १०, ११ द्विपदा प्रजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा विराड् गायत्री; ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक्; १२ परातिशक्वरी चतुष्पदा जगती ॥ मन्त्र १२।

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ १ ॥

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥ २ ॥

इन्द्र उक्थमदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्या॑ण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्व॑रिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥ [५।५]

सूक्त २७

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—अग्निः ।। छन्दः—१ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्; ३ द्विपदाऽऽर्ची बृहती; ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती; ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ६ द्विपदा विराण्-नामगायत्री; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ संस्तार-पङ्क्तिः; ९ षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भा परातिजगती; १०-१२ पुरउष्णिक् । मन्त्र १२ ।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥ १ ॥

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२॥

मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः । सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ॥ ३ ॥

अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥ ४ ॥

अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ५ ॥

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥ ६ ॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥ ७ ॥

उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने । आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ८ ॥

दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु। देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ।१०।
वनस्पतेऽव सृजा रराणः। त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥ ११ ॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः। इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ १२ ॥ [६।१]

सूक्त २८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—त्रिवृत्, अग्न्यादयः ॥ छन्दः—१-५, ८, ११, १४ त्रिष्टुप्; ६ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; ७, ९, १०, १२ ककुम्मत्यनुष्टुप्; १३ पुरउष्णिक् ॥ मंत्र १४।

नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय। हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥ १ ॥
अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥ २ ॥
त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥ ३ ॥
इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः। इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥ ४ ॥
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः। वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥ ५ ॥

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् । अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ।६।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥ ७ ॥

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥ ८ ॥

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् । भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥ ९ ॥

इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः । तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥ १० ॥

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे । तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥ ११ ॥

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः । अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥ १२ ॥

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा । संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥ १३ ॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु । भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥ १४ ॥ [६।२]

सूक्त २६

ऋषिः—चातनः ॥ देवताः—जातवेदाः, मन्त्रोक्ताश्च ॥ छन्द—१, २, ४, ६—११ त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदाविराण्नामगायत्री; ५ पुरोऽतिजगती बिराड्जगती; १२ भुरिगनुष्टुप्; १३, १६ अनुष्टुप्; १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥ मंत्र १५।

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ॥ त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥ १ ॥

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः। यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥ २ ॥

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः। विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३ ॥

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि। पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि। ॥ ४ ॥

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः। तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥ ५ ॥

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ। तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥ ६ ॥

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्येऽ यः। तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥ ७ ॥

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ८ ॥

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ऽयमस्तु ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः । तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१० ॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः । सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ११ ॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥ १२ ॥

सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु । १३ ॥

एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः । तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥ १४ ॥

तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा । जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ॥ १५ ॥ [६।३]

सूक्त ३०

ऋषिः उन्मोचनः (आयुष्यकामः) ॥ देवता— मन्त्रोक्ताः, आयुः ॥ छन्दः— १ पथ्या पङ्क्तिः; २-८, १०, ११, १३, १५, १६ अनुष्टुप; ९ भुरिगनुष्टुप १२ चतुष्पदा विराड्जगती; १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः; १७ षट्पदा जगती ॥ मन्त्र १७ ।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः । इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ १ ॥

यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ २ ॥

यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ३॥

यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ४ ॥

यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः । प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥ ६ ॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतो-जीवतोऽयनम् ॥ ७ ॥

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा । निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥ ८ ॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः । यक्ष्मः श्येनइव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥ ९ ॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः । तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥ १० ॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते। उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि॥ ११॥

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति। उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये॥ १२॥

ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्। शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु॥ १३॥

प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन। वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत्॥ १४॥

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते। सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥ १५॥

इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा। त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः॥ १६॥

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः। यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे। स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः॥ १७॥

[६।४]

सूक्त ३१

ऋषिः—शुक्रः। देवता—कृत्याप्रतिहरणम्॥ छन्दः—१—१० अनुष्टुप्; ११ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; १२ पथ्या बृहती॥ मन्त्र १२।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये। आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ १॥

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि । अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ २ ॥

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति । गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ३ ॥

यां ते चक्रुरमलायां वलगं वा नराच्याम् । क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ४ ॥

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः । शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ५ ॥

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने । अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ६ ॥

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे । दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ७ ॥

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः । सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ८ ॥

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् । म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ९ ॥

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि । अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥ १० ॥

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यम-
भगो भगवद्भ्यः ॥ ११ ॥

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् । इन्द्रस्तं हन्तु महता
वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥ १२ ॥ [६।५]

॥ इति पञ्चमं काण्डम् समाप्तम् ॥



अथ षष्ठं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—सविता ।। छन्दः—१ त्रिपदा पिपीलिकामध्या साम्नी जगती; २, ३ पिपीलिकामध्या पुरउष्णिक् ।। मन्त्र ३ ।

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेह्याथर्वण । स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १ ॥

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः सत्यस्य युवानम् । अद्रोघवाचं सुशेवम् ॥ २ ॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ॥ ३ ॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—सोमो वनस्पतिः ।। छन्दः—१—३ परोष्णिक् ।। मंत्र ३ ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत । स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १ ॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः । विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे । युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥ ३ ॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) ।। देवता—इन्द्रपूषादयः ।। छन्दः—१ पथ्या बृहती; २, ३ जगती ।। मंत्र ३ ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः । अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १ ॥

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः । पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥२॥

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् । अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥ ३ ॥ [११३]

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) ।। देवता—त्वष्ट्रादयः ।। छन्दः—१ पथ्या बृहती; २ संस्तारपङ्क्तिः; ३ त्रिपदा विराड्गायत्री ।। मंत्र ३ ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः । पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥ १ ॥

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः । अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥ २ ॥

धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् । द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥ ३ ॥ [११४]

सूक्त ५

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—१, ३ अग्निः; २ इन्द्रः ।। छन्दः—१, ३ अनुष्टुप्; २ भुरिगनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत। समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १ ॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी। रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥ २ ॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥ [१।५]

सूक्त ६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ ब्रह्मणस्पतिः; २, ३ सोमः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते। सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ १ ॥

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति। वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥ २ ॥

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः। अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥ ३ ॥ [१।६]

सूक्त ७

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता—१, २ सोमः; ३ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री; २, ३ गायत्री ॥ मंत्र ३।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः। तेना नोऽवसा गहि ॥ १ ॥

येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः। तेना नो अधि वोचत ॥ २ ॥

येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम्। तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥ [१।७]

सूक्त ८

ऋषिः—जमदग्निः ।। देवता—कामात्मा ।। छन्दः—१—३ पथ्या पङ्क्तिः ।। मंत्र ३ ।

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे । एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् । एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ २ ॥

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः । एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ३ ॥ [१।८

सूक्त ९

ऋषिः—जमदग्निः ।। देवता—कामात्मा ।। छन्दः - अनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

वाञ्छ मे तन्वं१ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छ सक्थ्यौ । अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥ १ ॥

मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् । गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ ३ ॥

सूक्त १०

ऋषिः—शन्तातिः ।। देवता—१ अग्निः २ वायुः; ३ सूर्यः ।। छन्दः—१ साम्नी त्रिष्टुप्; २ प्राजापत्या बृहती; ३ साम्नी बृहती ।। मंत्र ३ ।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥ १ ॥

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥ २ ॥

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥ ३ ॥ [१।१०]

सूक्त ११

ऋषिः—प्रजापतिः ।। देवता – १, २ रेतः; ३ मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—अनुष्टुप ; ।। मंत्र ३ ।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् । तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते । तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् । स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥ [२।१]

सूक्त १२

ऋषिः—गरुत्मान् ।। देवता—विषनिवारणम् ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् । रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥

यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा । यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥ २ ॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु । मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥ ३ ॥ [२।२]

सूक्त १३

ऋषिः—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । देवता – मृत्युः ।। छन्दः— अनुष्टुप् । मंत्र ३ ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः । अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः । सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥ २ ॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः । नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥ ३ ॥ [२।३]

सूक्त १४

ऋषिः—बभ्रुपिङ्गलः ॥ देवता—बलासः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥ १ ॥

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा । छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥ २ ॥

निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा । अथो इत इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥ ३ ॥ [२।४]

सूक्त १५

ऋषिः—उद्दालकः ॥ देवता—वनस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥ १ ॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ २ ॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः । तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥ ३ ॥ [२।५]

सूक्त १६

ऋषिः—शौनकः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिपदागायत्री; २ अनुष्टुप्; ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री ॥ मंत्र ४ ।

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥

विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥ २ ॥

तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ॥ ४ ॥
[२।६]

सूक्त १७

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता—गर्भदृंहणम् ॥ छन्दः —अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ २ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ३ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥
[२।७]

सूक्त १८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ईर्ष्याविनाशनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

ई॒र्ष्याया॒ ध्राजिं॑ प्रथ॒मां प्र॑थ॒मस्या॑ उ॒ताप॑राम्। अ॒ग्निं हृ॑द॒य्यं१॒ शोकं॒

तं ते॒ निर्वा॑पयामसि ॥ १ ॥

यथा॒ भूमि॑र्मृ॒तम॑ना मृ॒तान्मृ॒तम॑नस्तरा। यथो॒त म॒म्रुषो॒ मन॑ ए॒वेर्ष्यो॑र्मृ॒तं

मनः॑ ॥ २ ॥

अ॒दो यत् ते॑ हृ॒दि श्रि॒तं म॑न॒स्कं॑ पतयि॒ष्णुक॑म्। तत॑स्त ई॒र्ष्यां॑ मुञ्चामि॒

निरू॒ष्माणं॒ दृते॑रिव ॥ ३ ॥ [२।८]

सूक्त १९

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—अनुष्टुप्; २, ३ गायत्री ॥ मंत्र ३ ।

पु॒नन्तु॑ मा देवज॒नाः पु॒नन्तु॒ मन॑वो धि॒या। पु॒नन्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒

पव॑मानः पुनातु मा ॥ १ ॥

पव॑मानः पुनातु मा॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑। अथो॑ अरि॒ष्टता॑तये ॥ २ ॥

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च। अ॒स्मान् पु॑नीहि॒

चक्ष॑से ॥ ३ ॥ [२।९]

सूक्त २०

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—यक्ष्मनाशनम् ॥ छन्दः—१ अतिजगती; २ ककुम्मती प्रस्तारपङ्क्तिः; ३ सत.पङ्क्तिः ॥ मंत्र ३ ।

अ॒ग्नेरि॑वास्य॒ दह॑त एति शु॒ष्मिण॑ उ॒तेव॑ म॒त्तो वि॒लप॒न्नपा॑यति।

अ॒न्यम॒स्मदि॑च्छतु॒ कं चि॑दव्र॒तस्तपु॑र्वधाय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॑ ॥ १ ॥

नमो॑ रु॒द्राय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॒ नमो॒ राज्ञे॒ वरु॑णाय॒ त्विषी॑मते।

नमो॑ दि॒वे नमः॑ पृथि॒व्यै नम॒ ओष॑धीभ्यः ॥ २ ॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि । तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥ ३ ॥ [२।१०]

सूक्त २१

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—चन्द्रमाः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा । तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥ १ ॥

श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ । उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥ ३ ॥ [३।१]

सूक्त २२

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—१ आदित्यरश्मिः; २, ३ मरुतः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ चतुष्पदा भुरिग्जगती ॥ मंत्र ३ ।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति । त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू ऽदुः ॥ १ ॥

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः । ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥ २ ॥

उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति । एजाति ग्लहा कन्येऽव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥ ३ ॥ [३।२]

सूक्त २३

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्, २ त्रिपदा गायत्री; ३ परोष्णिक् ॥ मंत्र ३ ।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥ १ ॥

ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये। सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥ २॥

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः। शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥ ३ ॥ [३।३]

सूक्त २४

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः। आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥ १ ॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्। आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ २ ॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य१ स्थन। दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥ ३ ॥ [३।४]

सूक्त २५

ऋषिः—शुनःशेपः ॥ देवता—मन्याविनाशनम् ॥ छन्दः अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि। इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ १ ॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि। इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ २ ॥

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि। इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ ३ ॥ [३।५]

सूक्त २६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—पाप्मा ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

अव॑ मा पाप्मन्त्सृज व॒शी सन् मृ॑डयासि नः । आ मा॑ भ॒द्रस्य॑ लोके पा॑प्मन् धेह्यवि॑ह्रुतम् ॥ १ ॥

यो नः॑ पाप्म॒न् न जहा॑सि॒ तमु॑ त्वा जहिमो व॒यम् । प॒थाम॑नु व्या॒वर्त॑ने॒ऽन्यं पा॒प्मानु॑ पद्यताम् ॥ २ ॥

अ॒न्यत्रा॒स्मन्न्यु॑च्यतु सहस्रा॒क्षो अम॑र्त्यः । यं द्वेषा॑म॒ तमृ॑च्छतु॒ यमु॑ द्वि॒ष्मस्तमिज्ज॑हि ॥ ३ ॥ [३।६]

सूक्त २७

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—यमः; निर्ऋतिः ॥ छन्दः—१, ३ जगती; २ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

देवा॑ः क॒पोत॑ इषि॒तो यदि॒च्छन् दू॒तो निर्ऋ॑त्या इ॒दमा॑ज॒गाम॑ । तस्मा॑ अर्चा॑म कृ॒णवा॑म॒ निष्कृ॑तिं॒ शं नो॑ अस्तु द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥ १ ॥

शि॒वः क॒पोत॑ इषि॒तो नो॑ अस्त्वना॒गा दे॑वाः शकु॒नो गृ॒हं नः॑ । अ॒ग्निर्हि विप्रो॑ जु॒षतां॑ ह॒विर्नः॒ परि॑ हे॒तिः प॒क्षिणी॑ नो वृणक्तु ॥ २ ॥

हे॒तिः प॒क्षिणी॒ न द॑भात्य॒स्माना॒ष्ट्री प॒दं कृ॑णुते अग्नि॒धाने॑ । शि॒वो गोभ्य॑ उ॒त पुरु॑षेभ्यो नो अस्तु॒ मा नो॑ देवा इ॒ह हिंसीत् क॒पोत॑ः ॥ ३ ॥ [३।७]

सूक्त २८

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—यमः; निर्ऋतिः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ जगती ॥ मंत्र ३ ।

ऋ॒चा क॒पोतं॑ नुदत प्र॒णोद॒मिषं॒ मद॑न्त॒ः परि॒ गां न॑याम: । सं॒ लो॒भय॑न्तो दुरि॒ता प॒दानि॑ हि॒त्वा न॒ ऊर्जं॒ प्र प॑दा॒त् पथि॑ष्ठः ॥ १ ॥

परीमे३ऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ २ ॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः। योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥ [३।८]

सूक्त २९

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—यमः; निर्ऋतिः ॥ छन्दः—१, २ त्रिपदा विराण्नामगायत्री; ३ सप्तपदा विराडष्टिः ॥ मन्त्र ३ ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत्। यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥ १ ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः। कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात्। पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्। यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ॥ ३ ॥ [३।९]

सूक्त ३०

ऋषिः—उपरिबभ्रवः ॥ देवता—शमी ॥ छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप् ३ चतुष्पदा शङ्कुमत्यनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सदानवः ॥ १ ॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि। आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥ २ ॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि। मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥ [३।१०]

सूक्त ३१

ऋषिः—उपरिबभ्रवः ।। देवता—गौः ।। छन्दः—गायत्री ।। मंत्र ३ ।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसंदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥२॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरह-र्द्युभिः ॥ ३ ॥ [३।११]

सूक्त ३२

ऋषिः—१, २ चातनः; ३ अथर्वा ।। देवता—१ अग्निः; २ रुद्रः; ३ मित्रावरुणौ ।। छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।। मंत्र ३ ।

अन्तर्दावे जुहुता स्वे३तद् यातुधानक्षयणं घृतेन । आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥ १ ॥

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः । वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ २ ॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः । मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥ [४।१]

सूक्त ३३

ऋषिः—जाटिकायनः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१, ३ गायत्री; २ अनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥

नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः । पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥ २ ॥

स नो॑ ददातु॒ तां र॒यिमु॒रुं पि॒शङ्ग॑संदृशम् । इन्द्रः॒ पति॑स्तुवि॒ष्टमो॒ जने॒ष्वा ॥ ३ ॥ [४।२]

सूक्त ३४

ऋषिः—चातनः ।। देवता—अग्निः ।। छन्दः—गायत्री ।। मंत्र ५ ।

प्राग्नये॒ वाच॑मीरय वृष॒भाय॑ क्षिती॒नाम् । स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥ १ ॥

यो रक्षां॑सि नि॒जूर्व॑त्य॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॑ । स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥ २ ॥

यः पर॑स्याः परा॒वत॑स्ति॒रो धन्वा॑ति॒रोच॑ते । स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥३॥

यो विश्वा॒भि वि॒पश्य॑ति॒ भुव॑ना॒ सं च॒ पश्य॑ति । स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥ ४ ॥

यो अ॒स्य पा॒रे रज॑सः शु॒क्रो अ॒ग्नि जा॑यत । स नः॑ पर्ष॒दति॒ द्विषः॑ ॥५॥ [४।३]

सूक्त ३५

ऋषिः— कौशिकः ।। देवता—वैश्वानरः ।। छन्दः—गायत्री ।। मंत्र ३ ।

वै॒श्वा॒न॒रो न॑ ऊ॒तय॒ आ प्र या॑तु परा॒वतः॑ । अ॒ग्निर्नः॑ सुष्टु॒तीरुप॑ ॥ १॥

वै॒श्वा॒न॒रो न॒ आग॑मदि॒मं य॒ज्ञं स॒जूरुप॑ । अ॒ग्निरु॒क्थेष्वंह॑सु ॥ २ ॥

वै॒श्वा॒न॒रोऽङ्गि॑रसां॒ स्तोम॑मु॒क्थं च॑ चाक्लृपत् । ऐषु॑ द्यु॒म्नं स्व॒र्यमत् ॥३॥ [४।४]

सूक्त ३६

ऋषिः—अथर्वा ।। (स्वस्त्ययनकामः) देवता—अग्निः ।। छन्दः—गायत्री ।। मंत्र ३ ।

ऋ॒तावा॑नं वैश्वान॒रमृ॒तस्य॒ ज्योति॑ष॒स्पति॑म् । अज॑स्रं घ॒र्ममी॑महे ॥ १ ॥

स विश्वा॒ प्रति॑ चाक्लृ॒प ऋ॒तूंरु॒त्सृ॑जते व॒शी । य॒ज्ञस्य॒ वय॑ उत्ति॒रन् ॥ २ ॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥ [४।५]

सूक्त ३७

ऋषिः—अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) ॥ देवता—चन्द्रमाः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् । शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥ १ ॥

परि णो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् । शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥ २ ॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् । शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ३ ॥ [४।६]

सूक्त ३८

ऋषिः—अथर्वा (वर्चस्कामः) ॥ देवता—त्विषिः; बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ॥

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ १ ॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ २ ॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ३ ॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ । इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ४ ॥ [४।७]

सूक्त ३९

ऋषिः—अथर्वा (वर्चस्कामः) ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यशो॑ ह॒विर्व॑र्धता॒मिन्द्र॑जूतं स॒हस्र॑वीर्यं॒ सुभृ॑तं॒ सह॑स्कृतम् । प्र॒सर्स्रा॑ण॒मनु॑ दी॒र्घाय॑ चक्ष॑से ह॒विष्म॑न्तं मा वर्धय ज्ये॒ष्ठता॑तये ॥ १ ॥

अच्छा॑ न॒ इन्द्रं॑ य॒शसं॒ यशो॑भिर्यश॒स्विनं॑ नमसा॒ना विधेम । स नो॑ रास्व रा॒ष्ट्रमिन्द्र॑जूतं॒ तस्य॑ ते रा॒तौ य॒शसः॑ स्याम ॥ २ ॥

य॒शा इन्द्रो॑ य॒शा अ॒ग्निर्य॒शाः सोमो॑ अजायत । य॒शा विश्व॑स्य भू॒तस्या॒हम॑स्मि य॒शस्त॑मः ॥ ३ ॥ [४।८]

सूक्त ४०

ऋषिः—१, २ अथर्वा (अभयकामः); ३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) ॥ देवता—१, २ मन्त्रोक्ताः; ३ इन्द्रः ॥ छन्दः १, २ जगती; ३ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ॥

अभ॑यं द्यावापृथिवी इ॒हास्तु॒ नोऽभ॑यं॒ सोमः॑ सवि॒ता नः॑ कृणोतु । अभ॑यं नोऽस्तू॒र्व॑१न्तरि॑क्षं सप्तऋषी॒णां च॑ ह॒विषाभ॑यं नो अस्तु ॥ १ ॥

अ॒स्मै ग्रामा॑य प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒ ऊर्जं॑ सुभू॒तं स्व॒स्ति स॑वि॒ता नः॑ कृणोतु । अ॒श॒त्रि॒विन्द्रो॑ अभ॑यं नः कृणोत्व॒न्यत्र॒ राज्ञा॑म॒भि या॑तु म॒न्युः ॥ २ ॥

अ॒न॒मि॒त्रं नो॑ अध॒राद॑नमि॒त्रं न॑ उत्त॒रात् । इन्द्रा॑नमि॒त्रं नः॑ प॒श्चाद॑न-मि॒त्रं पु॒रस्कृ॑धि ॥ ३ ॥ [४।९]

सूक्त ४१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—मन आदयो दैव्या ऋषयः ॥ छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ॥

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये । मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे । सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्व१स्तनूजाः । अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ ३ ॥ [४।१०]

सूक्त ४२

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः (परस्परं चित्तैकीकरणकामः) ॥ देवता—मन्युः ॥ छन्दः—१, २ भुरिगनुष्टुप्; ३ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ॥

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः । यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥ १ ॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते । अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥ २ ॥

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च । यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥ [५।१]

सूक्त ४३

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः (परस्परं चित्तैकीकरणकामः) ॥ देवता—मन्युशमनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ॥

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च । मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥ १ ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति । दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि। यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥ [५।२]

सूक्त ४४

ऋषिः – विश्वामित्रः ॥ देवता – मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः – १, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिपदा महाबृहती ॥ मंत्र ३ ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् । अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥ १ ॥

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च । श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥ २ ॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः । विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥ [५।३]

सूक्त ४५

ऋषिः—अङ्गिराः; प्रचेताः; यमश्च ॥ देवता—दुःस्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१ पथ्या पङ्क्तिः; २ भुरिक्त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि । परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥

अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः । अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ २ ॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ॥ ३ ॥ [५।४]

सूक्त ४६

ऋषिः—अङ्गिराः; प्रचेताः; यमश्च ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१ विष्टारपङ्क्तिः; २ शक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती; ३ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न । वरुणानी ते माता यमः पिताररुर्नामासि ॥ १ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥ २ ॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥ ३ ॥ [५।५।]

सूक्त ४७

ऋषिः—अङ्गिराः; प्रचेताः; यमश्च ॥ देवता—१ अग्निः; २ विश्वेदेवाः; ३ सुधन्वा ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः । स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥ १ ॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः । आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ २ ॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त । ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥ ३ ॥ [५।६]

सूक्त ४८

ऋषिः—अङ्गिराः; प्रचेताः; यमश्च ।। देवता—मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—उष्णिक् ।। मन्त्र ३ ।

श्येनो॑ऽसि गाय॒त्रच्छ॑न्दा॒ अनु॑ त्वा॒ र॑भे । स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

ऋ॒भुर॑सि॒ जग॑च्छन्दा॒ अनु॑ त्वा॒ र॑भे । स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥

वृषा॑सि त्रि॒ष्टुप्छ॑न्दा॒ अनु॑ त्वा॒ र॑भे । स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्यो॒दृचि॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥ [५।७]

सूक्त ४९

ऋषिः—गार्ग्यः ।। देवता—अग्निः ।। छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ जगती; ३ निचृज्जगती ।। मन्त्र ३ ।

न॒हि ते॑ अग्ने त॒न्व॑ः क्रू॒रमा॒नंश॒ मर्त्यः॑ । क॒पिर्ब॑भस्ति॒ तेज॑नं॒ स्वं ज॒रायु॒ गौरि॑व ॥ १ ॥

मे॒ष इ॑व॒ वै सं च॒ वि चो॒र्व॑च्यसे॒ यदु॑त्तर॒द्रावुप॑रश्च॒ खाद॑तः । शी॒र्ष्णा शिरोऽप्स॒साप्सो॑ अ॒र्दय॑न्न॒ंशून् ब॑भस्ति॒ हरि॑तेभिरा॒सभिः॑ ॥ २ ॥

सु॒प॒र्णा वाच॑मक्र॒तोप॒ द्य॑व्या॑ख॒रे कृष्णा॑ इषि॒रा अ॑नर्तिषुः । नि॒ यन्नि॒यन्त्युप॑रस्य॒ निष्कृ॑तिं पु॒रू रेतो॑ दधिरे सूर्य॒श्रितः॑ ॥ ३ ॥ [५।८]

सूक्त ५०

ऋषिः—अथर्वा (अभयकामः) ।। देवता—अश्विनौ ।। छन्दः—१ विराड्जगती; २, ३ पथ्या पङ्क्तिः ।। मन्त्र ३ ।

ह॒तं त॒र्दं स॑म॒ङ्कमा॒खुम॑श्विना छि॒न्तं शिरो॒ अपि॑ पृ॒ष्टीः शृ॑णीतम् । यवा॒न्नेद॒दा॒नपि॒ नह्य॑तं॒ मुख॒मथाभ॑यं कृणुतं धा॒न्या॑य ॥ १ ॥

तर्द है पतंङ्ग है जभ्य हा उपक्वस। ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥ २ ॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे। य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ्जम्भयामसि ॥ ३ ॥ [५।९]

सूक्त ५१

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—१ सोमः; २ आपः; ३ वरुणः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २ त्रिष्टुप् ३ जगती ॥ मन्त्र ३ ।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १ ॥

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ २ ॥

यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति। अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ३ ॥ [५।१०]

सूक्त ५२

ऋषिः—भागलिः ॥ देवता—१ सूर्यः; २ गावः; ३ भेषजम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्। आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ १ ॥

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत। न्यूर्मयो नदीनां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥

आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम्। आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥ ३ ॥ [६।१]

सूक्त ५३

ऋषिः—बृहच्छुक्रः ॥ देवता—पृथिव्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु । अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥ १ ॥

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु । वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥ २ ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन । त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद् विरिष्टम् ॥ ३ ॥ [६।२]

सूक्त ५४

ऋषि—ब्रह्मा ॥ देवता - अग्नीषोमौ ॥ छन्दः— अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये । अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥ १ ॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥ २ ॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ [६।३]

सूक्त ५५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता – १ विश्वेदेवाः; २, ३ रुद्रः ॥ छन्दः—१, ३ जगती; २ त्रिष्टुप् ? ॥ मंत्र ३ ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति । तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥ १ ॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात । आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥ २ ॥

इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ३ ॥　　[६।४)

सूक्त ५६

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—१ विश्वेदेवाः; २, ३ रुद्रः; ॥ छन्दः—१ उष्णिग्-गर्भा पथ्या पङ्क्तिः; २ निचृदनुष्टुप्; ३ विराडनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् । संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥ १ ॥

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये । स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥ २ ॥

सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू । सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्य[म् ॥ ३ ॥　　[६।५]

सूक्त ५७

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—१. २ रुद्रः; ३ [भेषजम्] ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ पथ्या बृहती ॥ मन्त्र ३ ।

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् । येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥ ॥

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत । जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥ २ ॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् । क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥ ३ ॥　　[६।६]

सूक्त ५८

ऋषिः—अथर्वा (यशस्कामः) ॥ देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ जगती; २ प्रस्तारपङ्क्ति : ३ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे । यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥ १ ॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः । एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ २ ॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत । यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥ ३ ॥ [६।७]

सूक्त ५९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१ अरुन्धत्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति । अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १ ॥

शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्मां उत पूरुषान् ॥ २ ॥

विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥ [६।८]

सूक्त ६०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता —अर्यमा ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः । अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये ॥ १ ॥

अश्वं नदियमर्यमन्नासां समनं यती । अङ्गो न्व१र्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥ २ ॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् । धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्य१म् ॥ ३ ॥ [६।२]

सूक्त ६१

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता—रुद्रः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । मंत्र ३ ।

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् । मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥ १ ॥

अह विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् । अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥ २ ॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् । अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥ ३ ॥ [६।१०]

सूक्त ६२

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता – वैश्वानरादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः —त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः । द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥ १ ॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो१ वीतपृष्ठाः । तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २ ॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः । इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ ३ ॥ [७।१]

सूक्त ६३

ऋषिः—द्रुह्वणः (१—३ आयुर्वर्चोबलकामः) देवता—१ निर्ऋतिः; २ यमः; ३ मृत्युः; ४ अग्निः ॥ छन्दः—१—३ जगती (? त्रिष्टुप्); ४ अनुष्टुप् । मंत्र ४ ।

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् । तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ १ ॥

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् । यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ २ ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् । यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ३ ॥

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ४ ॥ [७।२]

सूक्त ६४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सांमनस्यम् ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् । समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥ २ ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३ ॥ [७।३]

सूक्त ६५

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—पराशरः; इन्द्रः ॥ छन्दः—१ पथ्या पङ्क्तिः; २, ३ अनुष्टुप्; ॥ मंत्र ३ ।

अव मन्युरवायतावं बाहू मनोयुजा । पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्मं-मर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥ १ ॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ । वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेनं हविषाहम् ॥ २ ॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः । जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥ [७१४]

सूक्त ६६

ऋषिः – अथर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २, ३ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् । समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामवहा रो विविद्धः ॥ १ ॥

आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ । निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥ २ ॥

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि । अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥ ३ ॥ [७१५]

सूक्त ६७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥ १ ॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः । तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥

ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥ ३ ॥ [७१६]

सूक्त ६८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सवित्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ पुरोविराडतिशक्वरी-गर्भा चतुष्पदा जगती; २ अनुष्टुप्; ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि । आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥ १ ॥

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा । चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २ ॥

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥ [७१७]

सूक्त ६९

ऋषिः—अथर्वा (वर्चस्कामो यशस्कामश्च)॥ देवता—बृहस्पतिः; अश्विनौ ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः । सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥ १ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ २ ॥

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः । तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ ३ ॥ [७१८]

सूक्त ७०

ऋषिः—काङ्कायनः ।। देवता—अघ्न्या ।। छन्दः—जगती ।। मन्त्र ३ ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो वृषण्यतः स्त्रियां निहन्यते मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ।। १ ।।

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ।। २ ।।

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ।। ३ ।।
[७।६]

सूक्त ७१

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—१, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः ।। छन्दः—१, २ जगती; ३ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ३

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् । यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।। १ ।।

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः । यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।। २ ।।

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि । वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ।। ३ ।। [७।१०]

सूक्त ७२

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ।। देवता—शेपोऽर्कः ।। छन्दः—१ जगती; २ अनुष्टुप्; ३ भुरिगनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया । एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ।। १ ।।

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्। यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥ २ ॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्। यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥ ३ ॥ [७।११]

सूक्त ७३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वरुणादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ३ भुरिक् २ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु। अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा। तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ २ ॥

इहैव स्त मापयाताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु। वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥ [८।१]

सूक्त ७४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ब्रह्मणस्पत्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता। सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः। अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ २ ॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः। एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमाञ्जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥ ३ ॥ [८।२]

सूक्त ७५

ऋषिः—कबन्धः (सपत्नक्षयकामः) ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ षट्पदा जगती ।। मंत्र ३ ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति । नैर्बाध्ये न हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ।। १ ।।

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा । यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ।। २ ।।

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति । एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति । शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ।। ३ ।।
[८।३]

सूक्त ७६

ऋषिः—कबन्धः ।। देवता—सान्तपनाग्निः ।। छन्दः—१, २, ४ अनुष्टुप्; ३ ककुम्मत्यनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ।। १ ।।

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ।। २ ।।

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ।। ३ ।।

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ।। ४ ।।
[८।४]

सूक्त ७७

ऋषिः—कबन्धः ।। देवता—जातवेदाः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् । आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥ १ ॥

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् । आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे । २ ॥

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः । सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥ ३ ॥ [८।५]

सूक्त ७८

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—१, २ चन्द्रमाः; ३ त्वष्टा ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः । जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥ १ ॥

अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ २ ॥

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् । त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुष्कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥ [८।६]

सूक्त ७९

ऋषिः - अथर्वा ।। देवता—संस्फानम् ।। छन्दः—१, २ गायत्री; ३ त्रिपदा प्रजापत्या गायत्री ।। मंत्र ३ ।

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु । असमातिं गृहेषु नः ॥१॥

त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय । आ पुष्टमेत्वा वसु ॥ २ ॥

देवं संस्फान सहस्रपोषस्येशिषे। तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥ ३ ॥ [८.७]

सूक्त ८०

ऋषिः अथर्वा ॥ देवता—चन्द्रमाः ॥ छन्दः – १ भुरिगनुष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मंत्र ३ ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् । शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ १ ॥

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः । तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् । शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ ३ ॥ [८.८]

सूक्त ८१

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—आदित्याः । छन्दः– अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥ १ ॥

परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥

यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥ ३ ॥ [८.९]

सूक्त ८२

ऋषिः—भगः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥

येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा । तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥ २ ॥

यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः । तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥ [८।१०]

सूक्त ८३

ऋषिः—भगः ॥ देवता—सूर्यादयः ॥ छन्दः—१-३ अनुष्टुप्; ४ द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव । सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ १ ॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे । सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥ २ ॥

असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति । ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥ ३ ॥

वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥ ४ ॥ [६।१]

सूक्त ८४

ऋषिः—भगः ॥ देवता—निर्ऋतिः ॥ छन्दः—१ भुरिग् जगती; त्रिपदाऽऽर्ची बृहती; ३ जगती; ४ भुरिग् त्रिष्टुप्; ॥ मन्त्र ४ ।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् । भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥ १ ॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु । मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥ २ ॥

एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् । यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् । यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥ [६।२]

सूक्त ८५

ऋषिः—अथर्वा (यक्ष्मनाशनकामः) ॥ देवता—वनस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्ष्मा यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ १ ॥

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च । देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥ २ ॥

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः । एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥ ३ ॥ [६।३]

सूक्त ८६

ऋषिः—अथर्वा (वृषकामः) ॥ देवता—एकवृषः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् । वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥ १ ॥

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी । चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥ २ ॥

सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् । देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ॥ ३ ॥ [६।४]

सूक्त ८७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ध्रुवः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत ॥ १ ॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥

इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा । तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥ [९।५]

सूक्त ८८

ऋषिः - अथर्वा ॥ देवता—ध्रुवः ॥ छन्दः —१, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ १ ॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः । ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ २ ॥

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व । सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥ [९।६]

सूक्त ८९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

इदं यत्प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् । ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥ १ ॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः । वातं धूम इव सध्र्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥ २ ॥

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती। मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥ ३ ॥ [९।७]

सूक्त ९०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—रुद्रः ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ आर्ची भुरिगुष्णिक् ॥ मन्त्र ३ ।

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च। इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥ १ ॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः। तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥ २ ॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै। नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥ ३ ॥ [९।८]

सूक्त ९१

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—१, २ यक्ष्मनाशनम्; ३ आपः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः। तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥ १ ॥

न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः। नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥ २ ॥

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ३ ॥ [९।९]

सूक्त ९२

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वाजी ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

वातंरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ १ ॥
जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥ २ ॥
तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥
[६।१०]

सूक्त ६३

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—यमादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः । देवजनाः
सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥ १ ॥
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय । नमस्येभ्यो नम
एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥ २ ॥
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३॥ [१०।१]

सूक्त ६४

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता - सरस्वती ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप्; २ विराड्-जगती ॥ मन्त्र ३ ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि । अमी ये विव्रता स्थन
तान् वः सं नमयामसि ॥ १ ॥
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । मम वशेषु
हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ २ ॥

ओतें मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥ [१०१२]

सूक्त ९५

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—वनस्पतिः (कुष्ठः) ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ १ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ २ ॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत । गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥ ३ ॥ [१०१३]

सूक्त ९६

ऋषिः—भृग्वंगिराः ॥ देवता—१, २ वनस्पतिः; सोमः ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ विराण्नामगायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्या॒दुत । अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २ ॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः । सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ ३ ॥ [१०१३]

सूक्त ९७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, ३ देवः; मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ जगती; ३ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः। अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ॥ १ ॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्। बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥ २ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ३ ॥ [१०१५]

सूक्त ९८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ बृहतीगर्भास्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ३।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो᳡ भवेह ॥ १ ॥

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्। त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ २ ॥

प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहो᳡सि। यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥ ३ ॥

[१०१६]

सूक्त ९९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, २ इन्द्रः; ३ इन्द्रः; सोमः; सविता च ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ भुरिग् बृहती ॥ मन्त्र ३।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे। ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् ॥ १ ॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते । इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥ २ ॥

परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः । देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३ ॥ [१०१७]

सूक्त १००

ऋषिः—गरुत्मान् ।। देवता—वनस्पतिः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र ३ ।

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्य्दात् । तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥ १ ॥

यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् । तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥ २ ॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा । दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥ ३ ॥ [१०१८]

सूक्त १०१

ऋषिः—अथर्वाङ्गिरः ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च । यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् । तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ २ ॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि । क्रमस्वर्श इव रोहित-मनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥] [१०१९]

सूक्त १०२

ऋषिः—जमदग्निः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते । एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥ १ ॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव । रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥ २ ॥

आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च । तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥ ३ ॥ [१०।१०]

सूक्त १०३

ऋषिः—उच्छोचनः ॥ देवता—बृहस्पत्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् । संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥ १ ॥

सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् । इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ २ ॥

अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः । इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ ३ ॥ [११।१]

सूक्त १०४

ऋषिः—प्रशोचनः ॥ देवता—१, २ इन्द्राग्नी; ३ इन्द्राग्नी, सोमः, इन्द्रश्च; ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि । अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ॥ १ ॥

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम्। अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥ २ ॥

ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ। इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोत नः ॥ ३ ॥ [११।२]

सूक्त १०५

ऋषिः— उन्मोचनः ॥ देवता— कासा ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥ १ ॥

यथा बाण सुसंशितः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥ २ ॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥ ३ ॥ [११।३]

सूक्त १०६

ऋषिः—प्रमोचनः ॥ देवता – दूर्वा, शाला ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणी। उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥ १ ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्। मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥ २ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि। शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥ ३ ॥ [११।४]

सूक्त १०७

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—विश्वजित् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि । त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ १ ॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि । विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ २ ॥

विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि । कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ ३ ॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि । सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ ४ ॥ [११।५]

सूक्त १०८

ऋषिः—शौनकः ॥ देवता—१—३, ५ मेधा; ४ अग्निः ॥ छन्दः–१, ४, ५ अनुष्टुप्; २ उरोबृहती; ३ पथ्या बृहती ॥ मंत्र ५ ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि । त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥ १ ॥

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ २ ॥

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः । ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥ ३ ॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ ४ ॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि। मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥ ५ ॥ [११।६]

सूक्त १०९

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — पिप्पली ॥ छन्दः — अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यु३तातिविद्धभेषजी। तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥ १ ॥

पिप्पल्य१ः समवदन्तायतीर्जननादधि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ २ ॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः। वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥ ३ ॥ [११।७]

सूक्त ११०

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — १ पङ्क्तिः; २, ३ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि। स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १ ॥

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्। अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ २ ॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः। स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥ ३ ॥ [११।८]

सूक्त १११

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — अग्निः ॥ छन्दः — १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् २—४ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति । अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥ १ ॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् । कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥ २ ॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥ ३ ॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥ ४ ॥ [११।६]

सूक्त ११२

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् । स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ १ ॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् । स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥ २ ॥

येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च । वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ ३ ॥ [११।१०]

सूक्त ११३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः ॥ मंत्र ३ ।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे । ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् । नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥२॥

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि। ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥ [११।११]

सूक्त ११४

ऋषिः—ब्रह्मा—देवता—विश्वे देवाः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्। आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥ १ ॥

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः। यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥ २ ॥

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः। अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥ ३ ॥ [१२।१]

सूक्त ११५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता विश्वे देवाः छन्दः अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्। यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ १ ॥

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम्। भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥ २ ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥ ३ ॥ [१२।२]

सूक्त ११६

ऋषिः—जाटिकायनः ॥ देवता—विवस्वान् ॥ छन्दः— १, ३ जगती; २ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया। वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥ १ ॥

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति । मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् । यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥३॥ [१२।३]

सूक्त ११७

ऋषिः—कौशिकः (अनृणकामः) ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि । इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥ १ ॥

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् । अपमित्य धान्यं१ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥ २ ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम । ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥३॥ [१२।४]

सूक्त ११८

ऋषिः—कौशिकः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः । उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥ १ ॥

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् । ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ २ ॥

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः । ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ ३ ॥ [१२।५]

सूक्त ११९

ऋषिः—कौशिकः ।। देवता—वैश्वानरोऽग्निः ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि । वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ।। १ ।।

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु । स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ।। २ ।।

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् । अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ।। ३ ।। [१२।६]

सूक्त १२०

ऋषिः—कौशिकः ।। देवता—अन्तरिक्षादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—१ जगती; २ पङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम । अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ।। १ ।।

भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः । द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ।। २ ।।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः । अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ।। ३ ।। [१२।७]

सूक्त १२१

ऋषिः—कौशिकः ।। देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः १, २ त्रिष्टुप् ३, ४ अनुष्टुप् ।। मंत्र ४ ।

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये । दुःष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ।। १ ।।

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा। अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ २ ॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके। प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥ ३ ॥

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्। योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वां अनु क्षिय ॥ ४ ॥ [१२।८]

सूक्त १२२

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—विश्वकर्मा ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप्; ४, ५ जगती ॥ मंत्र ५।

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य। अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥ १ ॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन। अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥ २ ॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते। यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः। उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥ ४ ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि। यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५॥

[११।६]

सूक्त १२३

ऋषिः — भृगुः ॥ देवता विश्वे देवाः ॥ छन्दः — १, २ त्रिष्टुप्; ३ द्विपदा साम्न्यनुष्टुप्; ४ द्विपदा प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप् (एकावसाना); ५ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

एतं संधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः । अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १ ॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र । अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥

देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥ ४ ॥

नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु । विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥ ५ ॥　　[१२ १०]

सूक्त १२४

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — दिव्या आपः ॥ छन्दः — त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन । समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥ १ ॥

यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव । यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वाससु आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥ २ ॥

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव । सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ ३ ॥　　[१२।११]

सूक्त १२५

ऋषिः — अथर्वा ॥ देवता — वनस्पतिः ॥ छन्दः — १, ३ त्रिष्टुप्; २ जगती ॥ मंत्र ३ ।

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ १ ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः । अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २ ॥

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ३ ॥ [१३।१]

सूक्त १२६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—दुन्दुभिः ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३ पुरोबृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् । स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ १ ॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः । अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ २ ॥

प्रामूं जयाभी३मे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु । समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३ ॥ [१३।२]

सूक्त १२७

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—वनस्पतिः; यक्ष्मनाशनम् ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ षट्पदा जगती ॥ मंत्र ३ ।

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते । विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥ १ ॥

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ । वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥ २ ॥

यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः। वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम्। परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३॥[१३।३]

सूक्त १२८

ऋषिः— अङ्गिराः ॥ देवता—शकधूमः; सोमः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत। भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥ १ ॥

भद्राहं नो मध्यंन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः। भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥ २ ॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्। भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥ ३ ॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा। तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥ ४ ॥ [१३।४]

सूक्त १२९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—भगः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३।

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना। कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥ १ ॥

येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह। तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ २ ॥

यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः। तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥ ३ ॥

सूक्त १३०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—स्मरः ॥ छन्दः—१ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २—४ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४।

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥ [१३।६]

सूक्त १३१

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—स्मरः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥

अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥

यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् । ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥ [१३।७]

सूक्त १३२

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—स्मरः ॥ छन्दः—१ त्रिपादनुष्टुप्; २, ४, ५ (महा) बृहती; ३ भुरिगनुष्टुप् ॥ मंत्र ५ ।

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ १ ॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ २ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ३ ॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ४ ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या । तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ५ ॥ [१३।८]

सूक्त १३३

ऋषिः—अगस्त्यः ॥ देवता मेखला ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २, ५ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ॥ मंत्र ५ ।

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज । यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥ १ ॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् । पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥ २ ॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय । तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥

श्रद्धाया दुहिता तपसोधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव । सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे । सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ ५ ॥ [१३।९]

सूक्त १३४

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता—वज्रः ॥ छन्दः—१ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिपदा गायत्री; ३ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ३ ।

अयं वज्रंस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् । शृणातु ग्रीवाः प्र शृंणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥

अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् । वज्रेणावहतः शयाम् ॥ २ ॥

यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि । जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥ ३ ॥ [१३।१०]

सूक्त १३५

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवता वज्रः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे । स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः । प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥ २ ॥

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः । प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥ ३ ॥ [१३।११]

सूक्त १३६

ऋषिः—वीतहव्यः (केशवर्धनकामः) ॥ देवता नितत्नी वनस्पति ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप्; २ द्विपदा साम्नी बृहती (एकावसाना) ॥ मन्त्र ३ ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे । तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥ १ ॥

दृंह प्रत्नाञ्जनयाजातांञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥ २ ॥

यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते । इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३ ॥ [१३।१२]

सूक्त १३७

ऋषिः—वीतहव्यः(केशवर्धनकामः)।। देवता—नितत्नी वनस्पतिः । छन्दः-अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ॥

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥ [१३।१३]

सूक्त १३८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वनस्पतिः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ अनुष्टुप्; ३ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मंत्र ५ ।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥ १ ॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि । अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ २ ॥

क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् । कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् । ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ४ ॥

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना । एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥ ५ ॥ [१३।१४]

सूक्त १३९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वनस्पतिः ॥ छन्दः—१ षट्पदा विराड्जगती; २—५ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५ ।

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः । तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥

शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्य॑म् । अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २ ॥

संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद । अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥ ३ ॥

यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्य॑म् । एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४ ॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५ ॥ [१३।१५]

सूक्त १४०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः; दन्ताः ॥ छन्दः—१ उरोबृहती; २ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; ३ आस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ३ ।

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च । तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् । एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ २ ॥

उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ । अन्यत्र वां घोरं तन्व१ः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ ३ ॥ [१३।१६]

सूक्त १४१

ऋषि: विश्वामित्रः ॥ देवता अश्विनौ ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥ १ ॥

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥ [१३।१७]

सूक्त १४२

ऋषि: विश्वामित्रः ॥ देवता वायुः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव । मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥ १ ॥

आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २ ॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः । पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥ [१३।१८]

॥ इति षष्ठं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ सप्तमं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा (ब्रह्मवर्चस्कामः) ।। देवता—आत्मा ।। छन्दः—१ त्रिष्टुप् २ विराड्-जगती ।। मन्त्र २ ।

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि । तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः । स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ॥२॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ।। (ब्रह्मवर्चस्कामः) ।। देवता आत्मा ।। छन्दः-त्रिष्टुप् ।। मंत्र १ ।

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् । य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ।। (ब्रह्मवर्चस्कामः) ।। देवता – वायुः ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः । स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥ १ ॥ [१।३]

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा (ब्रह्मवर्चस्कामः) ।। देवता—वायुः ।। छन्दः – त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

एकंया च दुशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या चं। तिसृभिश्च वहंसे त्रिंशतां च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुंञ्च ॥ १ ॥ [१।४]

सूक्त ५

ऋषिः—अथर्वा (ब्रह्मवर्चस्कामः) ॥ देवता—आत्मा ॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप्; ३ पङ्क्तिः; ४ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५ ।

यज्ञेनं यज्ञमंयजन्त देवास्तानि धर्मांणि प्रथमान्यांसन् । ते ह नाकं महिमानंः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥

यज्ञो बंभूव स आ बंभूव स प्र जंज्ञे स उं वावृधे पुनंः । स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविंणमा दंधातु ॥ २ ॥

यद् देवा देवान् हविषायंजन्तामंर्त्यान् मनसामंर्त्येन । मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥ ३ ॥

यत् पुरुषेण हविषां यज्ञं देवा अतंन्वत । अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥

मुग्धा देवा उत शुनायंजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायंजन्त । य इमं यज्ञं मनंसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥ [१।५]

सूक्त ६ (७)

ऋषिः—अथर्वा (ब्रह्मवर्चस्कामः) ॥ देवता—अदितिः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३, ४ विराड् जगती ॥ मन्त्र ४ ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १ ॥

महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवंसे हवामहे । तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ २ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ ३ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥ ४ ॥ [११६]

सूक्त ७ (८)

ऋषिः—अथर्वा (ब्रह्मवर्चस्कामः) ॥ देवता—अदितिः ॥ छन्दः—आर्षी जगती ॥ मन्त्र १।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम्। तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन ॥ १ ॥ [११७]

सूक्त ८ (९)

ऋषिः—उपरिबभ्रवः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु। अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १ ॥ [११८]

सूक्त ९ (१०)

ऋषिः—उपरिबभ्रवः ॥ देवता—पूषा ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ४ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ४।

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः। उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्। स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३॥

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्। पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥ [११९]

सूक्त १० (११)

ऋषिः—शौनकः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ १ ॥ [१।१०]

सूक्त ११ (१२)

ऋषिः—शौनकः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् । मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥ १ ॥ [१।११]

सूक्त १२ (१३)

ऋषिः—शौनकः ॥ देवता—१ सभा, समितिः, पितरश्च; २ सभा; ३ इन्द्रः; ४ मनः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २—४ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने । येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु ॥ १ ॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि । ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥ २ ॥

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे । अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥ ३ ॥

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा । तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥ ४ ॥ [१।१२]

सूक्त १३ (१४)

ऋषिः—अथर्वा (द्विषो वर्चोहर्तुकामः) ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र २।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे । एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥ १ ॥

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ । उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥ २ ॥ [१।१३]

सूक्त १४ (१५)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ॥ मन्त्र ४ ।

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् । अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि । हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥ २ ॥

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै । अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥ ३ ॥

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि । पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥४॥ [२।१]

सूक्त १५ (१६)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् । यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥ १ ॥ [२।२]

सूक्त १६ (१७)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय । संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥ [२।३]

सूक्त १७ (१८)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता – धात्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २ अनुष्टुप्; ३, ४ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१॥

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २ ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे । तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥ [२।४]

सूक्त १८ (१९)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता – पृथिवी, पर्जन्यः ॥ छन्दः—१ चतुष्पाद्भुरिगुष्णिक्; २ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धीदं दिव्यं नभः । उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥ १ ॥

न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः । आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥ २ ॥ [२।५]

सूक्त १९ (२०)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—प्रजापतिः, धाता ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र १ ।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः । संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥ [२।६]

सूक्त २० (२१)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अनुमतिः ।। छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक् त्रिष्टुप्; ५ जगती; ६ अतिशक्वरगर्भा जगती ।। मन्त्र ६ ।

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ।। १ ।।

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ।। २ ।।

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् । तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ।। ३ ।।

यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु । तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ।। ४ ।।

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् । भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ।। ५ ।।

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति । तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ।।६।। [२१७]

सूक्त २२ (२१)

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—आत्मा ।। छन्दः—शक्वरीविराड्गर्भा जगती ।। मन्त्र १ ।

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् । स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ।। १ ।। [२१८]

सूक्त २२ (२३)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—लिङ्गोक्ताः; (ब्रध्नः) ॥ छन्दः—१ द्विपदा विराड्गायत्री (एकावसाना) २ त्रिपदाऽनुष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् । अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥ २ ॥ [२।६]

सूक्त २३ (२४)

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्व[मराय्य]: । दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥ [३।१]

सूक्त २४ (२५)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—सविता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः । तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥ [३।२]

सूक्त २५ (२६)

ऋषिः—मेधातिथिः ॥ देवता— विष्णुः वरुणश्च ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यै[र्वी]रतमा शविष्ठा । यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः । पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥ २ ॥ [३।३]

सूक्त २६ (२७)

ऋषिः—मेधातिथिः ॥ देवता—विष्णुः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ त्रिपदा विराड्गायत्री; ३ षट्पदा विराट्शक्वरी; ४—७ गायत्री; ८ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ८ ।

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्कंभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥ २ ॥

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ।३।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ॥५॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥७॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् । हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८ ॥ [३।४]

सूक्त २७ (२८)

ऋषिः—मेधातिथिः ॥ देवता—इडा ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः । घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ १ ॥ [३।५]

सूक्त २८ (२९)

ऋषिः—मेधातिथिः ॥ देवता—वेदः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति । हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥ [३।६]

सूक्त २९ (३०)

ऋषिः—मेधातिथिः ॥ देवता—अग्नाविष्णू ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम । दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ १ ॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ । दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥ २ ॥ [३।७]

सूक्त (३१)

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—द्यावापृथिवी, मित्रः; ब्रह्मणस्पतिः सविता च ॥ छन्दः—बृहती ॥ मन्त्र १ ।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् । स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ १ ॥ [३।८]

सूक्त (३२)

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः । देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व । यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥ [३।९]

सूक्त ३२ (३३)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आयुः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥ [३।१०]

सूक्त ३३ (३४)

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निश्च ।। छन्दः—पथ्या पङ्क्तिः ।। मंत्र १ ।

सं मा सिञ्चन्तु मुरुतः सं पूषा सं बृहुस्पतिः । सं मायमुग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥ [३।११]

सूक्त ३४ (३५)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—जातवेदाः ।। छन्दः—जगती ।। मंत्र १ ।

अग्ने जातान् प्र णुंदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व । अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥ १ ॥ [३ १२]

सूक्त ३५ (३६)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—जातवेदाः ।। छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप् ।। मन्त्र ३ ।

प्रान्यान्त्सुपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व । इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥

इमा यास्ते शुतं हिराः सुहस्रं धुमनीरुत । तासां ते सर्वासामुहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥ २ ॥

परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः । अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥ ३ ॥ [३।१३]

सूक्त ३६ (३७)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अक्षि, मनः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

अक्ष्यौ३ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ सुमञ्जनम् । अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सुहासति ॥ १ ॥ [३।१४]

सूक्त ३७ (३८)

ऋषिः - अथर्वा ॥ देवता—वासः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

अभि त्वा मनुंजातेन दधामि मम वासंसा । यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ १ ॥ [३।१५]

सूक्त ३८ (३९)

ऋषिः – अथर्वा ॥ देवता—वनस्पतिः (आसुरी) ॥ छन्दः— १, २, ४, ५ अनुष्टुप्; ३ चतुष्पदा उष्णिक् ॥ मन्त्र ५ ।

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमंभिरोरुदम् । परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दंनम् ॥ १ ॥

येनां निचक्र आंसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परिं । तेना नि कुंर्वे त्वामहं यथा तेऽसांनि सुप्रिया ॥ २ ॥

प्रतीची सोमंमसि प्रतीच्युत सूर्यम् । प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावंदामसि ॥ ३ ॥

अहं वंदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वदं । ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥

यदि वासिं तिरोजनं यदिं वा नद्य ∫ स्तिरः । इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानंयत् ॥ ५ ॥ [३।१६]

सूक्त ३९ (४०)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ॥ देवता—मन्त्रोक्ता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

दिव्यं सुपर्णं पंयसं बृहन्तंमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् । अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥ १ ॥ [४।१]

सूक्त ४० (४१)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ।। देवता—सरस्वान् ।। छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र २ ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः । यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ।। १ ।।

आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् । रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ।। २ ।। [४।२]

सूक्त ४१ (४२)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ।। देवता—श्येनः ।। छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र २ ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः । तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ।। १ ।।

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः । स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ।।२।। [४।३]

सूक्त ४२ (४३)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ।। देवता—सोमारुद्रौ ।। छन्दः – त्रिष्टुप् ।। मन्त्र २ ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश । बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत ।। १ ।।

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् । अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ।। २ ।। [४।४]

सूक्त ४३ (४४)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ।। देवता—वाक् ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः । तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ।। १ ।।

[४।५]

सूक्त ४४ (४५)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ॥ देवता—इन्द्रः, विष्णुः ॥ छन्दः—भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः । इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ १ ॥ [४।६]

सूक्त ४५ (४६)

ऋषिः—प्रस्कण्वः ॥ देवता—ईर्ष्यापनयनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥ १ ॥

सूक्त ४५ (४७)

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥ २ ॥ [४।७]

सूक्त ४६ (४८)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सिनीवाली ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १ ॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ २ ॥

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी । विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥ ३ ॥ [४।८]

सूक्त ४७ (४९)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—कुहूः ॥ छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि । सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ १ ॥

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत। शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥ २ ॥ [४।९]

सूक्त ४८ (५०)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—राका ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र २।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्य[म् ॥ १ ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥ २ ॥ [४।१०]

सूक्त ४९ (५१)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—देवपत्न्यः। छन्द—१ आर्षी जगती; २ चतुष्पदा पङ्क्तिः ॥ मन्त्र २।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये। याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१॥

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्। आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ २ ॥ [४।११]

सूक्त ५० (५२)

ऋषिः—अङ्गिराः (कितवबधकामः) ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ५, ८, ९ अनुष्टुप्; ३, ७ त्रिष्टुप्; ४ जगती; ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ९।

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति। एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥ १ ॥

तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्। समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥ २ ॥

ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः। रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ ३ ॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम्। अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥ ५ ॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले। यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ६ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे। वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ ७ ॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥ ८ ॥

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव। सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥ ९ ॥ [४।१२]

सूक्त ५१ (५३)

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता— इन्द्राबृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥ [४।१३]

सूक्त ५२ (५४)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सांमनस्यम्, अश्विनौ ॥ छन्दः—१ ककुम्मत्यनुष्टुप्; २ जगती ॥ मन्त्र २।

सं॒ज्ञानं॑ नः॒ स्वेभिः॑ सं॒ज्ञान॒मर॑णेभिः । सं॒ज्ञान॑मश्विना यु॒वमि॒हास्मासु॑ नि य॑च्छतम् ॥ १ ॥

सं जा॑नामहै॒ मन॑सा॒ सं चिकि॒त्वा मा यु॑ष्महि॒ मन॑सा॒ दैव्ये॑न । मा घोषा॒ उत्स्थु॑र्बहु॒ले वि॒निर्ह॑ते॒ मेषुः॑ पप्त॒दिन्द्र॒स्याह॒न्याग॑ते ॥ २ ॥ [५।१]

सूक्त ५३ (५५)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आयुः, बृहस्पतिः, अश्विनौ च ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ भुरिक् त्रिष्टुप्; ४ उष्णिग्गर्भार्षी पङ्क्तिः; ५—७ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

अ॒मु॒त्र॒भूया॒दधि॒ यद् य॒मस्य॒ बृह॑स्पते अ॒भिश॑स्तेरमु॑ञ्चः । प्रत्यौ॑हता॒मश्विना॑ मृ॒त्युम॒स्मद् दे॒वाना॑मग्ने भि॒षजा॒ शची॑भिः ॥ १ ॥

सं क्रा॑मतं॒ मा ज॑हीतं॒ शरी॑रं प्राणापा॒नौ ते॑ स॒युजा॑वि॒ह स्ता॑म् । श॒तं जीव॑ श॒रदो॒ वर्ध॑मा॒नोऽग्नि॑ष्टे गो॒पा अ॑धि॒पा वसि॑ष्ठः ॥ २ ॥

आयु॒र्यत् ते॒ अति॑हितं परा॒चैर॑पा॒नः प्रा॒णः पुन॒रा तावि॑ताम् । अ॒ग्निष्ट॒दाहा॒र्निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॒त् तदा॒त्मनि॒ पुन॒रा वे॑शयामि ते ॥ ३ ॥

मेमं प्रा॒णो हा॑सी॒न्मो अ॑पा॒नोऽव॒हाय॒ परा॑ गात् । स॒प्तर्षिभ्य॑ एनं॒ परि ददामि॒ त ए॑नं स्व॒स्ति ज॒रसे॑ वहन्तु॒ ॥ ४ ॥

प्र वि॑शतं प्राणापानावन॒ड्वाहा॑विव व्र॒जम् । अ॒यं ज॑रि॒म्णः शे॑व॒धिररि॑ष्ट इ॒ह व॑र्धताम् ॥ ५ ॥

आ ते॑ प्रा॒णं सु॑वामसि॒ परा॒ यक्ष्मं॑ सुवामि ते । आयु॑र्नो वि॒श्वतो॑ दधद॒यम॒ग्निर्वरे॑ण्यः ॥ ६ ॥

उद् व॒यं तम॑स॒स्परि॒ रोह॑न्तो॒ नाक॑मुत्त॒मम् । दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम् ॥ ७ ॥ [२।७]

सूक्त ५४ (५६)

ऋषिः—१ ब्रह्मा; भृगुः ॥ देवता—ऋक्सामनौ; २ इन्द्रश्च ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

ऋचं साम॑ यजामहे याभ्यां कर्मा॑णि कुर्वते॑ । एते सद॑सि राजतो युज्ञं देवेषु॑ यच्छतः ॥ १ ॥

ऋचं साम॒ यदप्रा॑क्षं हविरोजो यजुर्बल॑म् । एष मा॒ तस्मा॒न्मा हिंसीद् वेद॑ः पृष्टः श॑चीपते ॥ २ ॥ [५।३]

सूक्त ५५ (५७)

ऋषिः—भृगुः । देवता—इन्द्र. ॥ छन्दः—विराट् परोष्णिक् ॥ मन्त्र १ ।

ये ते॒ पन्था॒नोव॑ दिवो येभि॒र्विश्व॒मैर॑यः । तेभि॑ः सुम्न॒या धे॑हि नो वसो ॥ १ ॥ [५।४]

सूक्त ५६ (५८)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वृश्चिकादयः; २ वनस्पतिः; ४ ब्रह्मणस्पतिः (विषभैषज्यम्) ॥ छन्दः—१—३. ५—८ अनुष्टुप्; ४ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ८ ।

तिर॑श्चिराजेरसि॒तात् पृदा॑कोः परि॒ संभृ॑तम् । तत् क॒ङ्कप॑र्वणो वि॒षमि॒यं वी॒रुद॑नीनशत् ॥ १ ॥

इ॒यं वी॒रुन्मधु॑जाता मधु॒श्चुन्म॑धु॒ला म॒धूः । सा वि॒ह्रुत॑स्य भेष॒ज्यथो॑ मशक॒जम्भ॑नी ॥ २ ॥

यतो॑ द॒ष्टं यतो॑ धी॒तं तत॑स्ते॒ निर्ह्व॑यामसि । अ॒र्भस्य॑ तृप्रद॒ंशिनो॑ म॒शक॑स्यार॒सं वि॒षम् ॥ ३ ॥

अ॒यं यो व॒क्रो विप॑रु॒र्व्य॑ङ्गो॒ मुखा॑नि व॒क्रा वृ॑जि॒ना कृ॒णोषि॑ । तानि॒ त्वं ब्र॑ह्मणस्पत इ॒षीका॑मिव॒ सं न॑मः ॥ ४ ॥

अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः । विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥

न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः । अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥ ६ ॥

अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः । सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥ ७ ॥

य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च । आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ॥ ८ ॥ [५।५]

सूक्त ५७ (५९)

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र २ ।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु । यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥ १ ॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि । उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥ २ ॥ [५।६]

सूक्त ५८ (६०)

ऋषिः—कौरुपथिः ॥ देवता—इन्द्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ जगती; २ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ । युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥ १ ॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् । इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ २ ॥ [५।७]

सूक्त ५९ (६१)

ऋषिः—बादरायणिः ॥ देवता—अरिनाशनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् । वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥ १ ॥ [५।८]

सूक्त ६० (६२)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—गृहाः; वास्तोष्पतिः ॥ छन्दः—१, परानुष्टुप्; त्रिष्टुप्; २—७ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ७ ।

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण । गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः । पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ २ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३ ॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः । अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥ ४ ॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः । अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥ ६ ॥

इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत । ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥ [६।१]

सूक्त ६१ (६३)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अग्निः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र २ ।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ १ ॥

अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ २ ॥ [६।२]

सूक्त ६२ (६४)

ऋषिः—मरीचिः काश्यपः ।। देवता—अग्निः ।। छन्दः—जगती ।। मन्त्र १ ।

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः । नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ १ ॥ [६।३]

सूक्त ६३ (६५)

ऋषिः—मारीचिः कश्यपः ।। देवता—जातवेदाः ।। छन्दः—जगती; । मन्त्र १ ।

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥ [६।४]

सूक्त ६४ (६६)

ऋषिः—यमः ।। देवता—१ आपः २ अग्निः ।। छन्दः—१ भुरिगनुष्टुप्; २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।। मन्त्र २ ।

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् । आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥ १ ॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन । अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥ २ ॥ [६।५]

सूक्त ६५ (६६)

ऋषिः— शुक्रः ॥ देवता—अपामार्गः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ । सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥ १ ॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया । त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥ २ ॥

श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ३ ॥ [६।६]

सूक्त ६६ (६८)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—ब्राह्मणम् ॥ छन्दः—त्रिष्टुप ॥ मन्त्र १ ।

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु । यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥ ॥ १ ॥ [६।७]

सूक्त ६७ (६९)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आत्मा । छन्दः—पुरःपरोष्णिग् बृहती ॥ मंत्र १ ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च । पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥ [६।८]

सूक्त ६८ (७०)

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—सरस्वती ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ त्रिष्टुप्; ३ गायत्री ॥ मंत्र ३ ।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥

इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् । इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ॥३॥
[६।९]

सूक्त ६९ (७२)

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—सुखम् ॥ छन्दः—पथ्यापङ्क्तिः ॥ मन्त्र १ ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः । अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥ १ ॥ [६।१०]

सूक्त ७० (७३)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—श्येनादयो मन्त्रोक्ताः । छन्दः—१ त्रिष्टुप्; अतिजगतीगर्भा जगती; ३ पुरःककुम्मत्यनुष्टुप्; ४, ५ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५ ।

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा । तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥ १ ॥

यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् । इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् स पादि यदसौ जुहोति ॥ २ ॥

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव । आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥ ३ ॥

अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥ ४ ॥

अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥ ५ ॥ [६।११]

सूक्त ७१ (७४)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ १ ॥ [६।१२]

सूक्त ७२ (७५)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१, अनुष्टुप्; २ ३ त्रिष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

उत् तिष्ठतावं पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् । यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ॥ १ ॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् । परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २ ॥

सूक्त ७२ (७६)

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः । माध्यंन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्रः वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ ॥ [६।१३]

सूक्त ७३ (७७)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—घर्मः; अश्विनौ, प्रत्यृचं मन्त्रोक्ता वा ।। छन्दः—१. ४, ६ जगती; २ पथ्याबृहती; ३, ५, ७—११ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ११ ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु । वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् । दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥ २ ॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः । तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ३ ॥

यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् । माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥ ४ ॥

तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् । मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ५ ॥

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः । वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ६ ॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् । श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ७ ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् । दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ८ ॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् । विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ९ ॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु । सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ १० ॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम । अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ११ ॥ [६।१४]

सूक्त ७४ (७८)

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता - मन्त्रोक्ताः; ४ जातवेदाः ॥ छन्दः—[१—२] अनुष्टुप्; [४ त्रिष्टुप्] ॥ मन्त्र ४ ।

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम । मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥ १ ॥

विध्यामयासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् । इदं जघन्यामासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥ २ ॥

त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् । अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ॥ ३ ॥

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह । तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥ ४ ॥ [७।१

सूक्त ७५ (७९)

ऋषिः—उपरिबभ्रवः ॥ देवता—अघ्न्याः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ पञ्चपदा भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः ॥ मन्त्र २ ।

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः । मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ १ ॥

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्देवेभिरेत । इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ २ ॥ [७।२]

सूक्त ७६ (८०)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, २ अपचिद् भैषज्यम्; ३—५ जायान्यः; ६ इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् ॥ २ परोष्णिक्; ३, ४ अनुष्टुप्; ५ भुरिगनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः । सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥ १ ॥

या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः । विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥ २ ॥

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्य१मवतिष्ठति। निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ॥ ३ ॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम् । तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४ ॥

सूक्त ७६ (८१)

विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे। कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥ ५ ॥

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् । माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥ [७।३]

सूक्त ७७ (८२)

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१ त्रिपदा गायत्री; २ त्रिष्टुप्; ३ जगती ॥ मन्त्र ३ ।

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। अस्माकोती रिशादसः ॥ १ ॥

यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति । द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥ २ ॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः । ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥३॥ [७।४]

सूक्त ७८ (८३)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ परोष्णिक्; २ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र २ ।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥ १ ॥

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन । दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥ २ ॥ [७५]

सूक्त ७९ (८४)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अमावस्या ॥ छन्दः—१ जगती ॥ २—४ त्रिष्टुप्; ॥ मंत्र ४।

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा । तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ १ ॥

अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे । मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥ २ ॥

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती । अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥ ३ ॥

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४ ॥ [७६]

सूक्त ८० (८५)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१, २, ४ पौर्णमासी; ३ प्रजापतिः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ४।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय । तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥ १ ॥

वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे । स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥ २ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ३ ॥

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु। ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥ ४ ॥ [७।७]

सूक्त ८१ (८६)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सावित्री, सूर्यः, चन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, २, ६ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ आस्तारपङ्क्तिः; ५ स्वराडास्तारपङ्क्तिः ॥ मंत्र ६ ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् । विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ १ ॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् । भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २ ॥

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि । अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥ ३ ॥

दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः । समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व । आ वयं प्यासिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ५ ॥

यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति । तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ ६ ॥ [७।८]

सूक्त ८२ (८७)

ऋषिः—शौनकः (संपत्कामः) ॥ देवता - अग्निः ॥ छन्दः—१, ४—६ त्रिष्टुप्; २ ककुम्मती बृहती; ३ जगती ॥ मंत्र ६ ।

अभ्य॒र्चत सुष्टु॒तिं गव्य॑मा॒जिम॒स्मासु॑ भ॒द्रा द्रवि॑णानि धत्त । इ॒मं य॒ज्ञं नयत दे॒वता॑ नो घृ॒तस्य॒ धारा॒ मधु॑मत् पवन्ताम् ॥ १ ॥

मय्य॒ग्रे अ॒ग्निं गृ॑ह्णामि स॒ह क्ष॒त्रेण॒ वर्च॑सा॒ बले॑न । मयि॑ प्र॒जां मय्यायु॑र्दधामि॒ स्वाहा॒ मय्य॒ग्निम् ॥ २ ॥

इ॒हैवाग्ने॒ अधि॑ धारया र॒यिं मा त्वा॒ नि क्र॒न् पूर्व॑चित्ता निका॒रिण॑ः क्ष॒त्रेणा॑ग्ने सु॒यम॑मस्तु॒ तुभ्य॑मुपस॒त्ता व॑र्धतां ते॒ अनि॑ष्टृतः ॥ ३ ॥

अन्व॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्य॒दन्वहा॑नि प्रथ॒मो जा॒तवे॑दाः । अनु॒ सूर्य॑ उ॒षसो॒ अनु॑ र॒श्मीननु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ वि॑वेश ॥ ४ ॥

प्रत्य॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्य॒त् प्रत्यहा॑नि प्रथ॒मो जा॒तवे॑दाः । प्रति॒ सूर्य॑स्य पुरु॒धा च॑ र॒श्मीन् प्रति॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑तान ॥ ५ ॥

घृ॒तं ते॑ अग्ने दि॒व्ये स॒धस्थे॑ घृ॒तेन॒ त्वां मनु॑र॒द्या समि॑न्धे । घृ॒तं ते॑ दे॒वीर्न॒प्त्य१॒ आ व॑हन्तु घृ॒तं तुभ्यं॑ दुह्रतां॒ गावो॑ अग्ने ॥ ६ ॥ [८।१]

सूक्त ८३ (८८)

ऋषिः—शुनःशेपः ॥ देवता—वरुणः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ पथ्या पङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप् ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

अ॒प्सु ते॑ राजन् वरुण गृ॒हो हि॑र॒ण्ययो॑ मि॒थः । ततो॑ धृ॒तव्र॑तो॒ राजा॒ सर्वा॒ धामा॑नि मुञ्चतु ॥ १ ॥

धाम्नो॑धाम्नो राजन्नि॒तो व॑रुण मुञ्च नः । यदापो॑ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ यदू॒चिम ततो॑ वरुण मुञ्च नः ॥ २

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये। दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥ [८।२]

सूक्त ८४ (८६)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—१ अग्निः २; ३ इन्द्रः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ३।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह। विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ॥१॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्। अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ २ ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥३॥ [८।३]

सूक्त८५ (९०)

ऋषिः—अथर्वा ॥(स्वस्त्ययनकामः)॥ देवता—तार्क्ष्यः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र १।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥ [८।४]

सूक्त ८६ (९१)

ऋषिः—अथर्वा ॥ (स्वस्त्ययनकामः)॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्। हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥ १ ॥ [८।५]

सूक्त ८७ (९२)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—रुद्रः ॥ छन्दः—जगती ॥ मंत्र १ ।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १ ॥ [८।६]

सूक्त ८८ (९३)

ऋषिः—गरुत्मान् । देवता—सर्पविषापाकरणम् । छन्दः—बृहती ॥ मन्त्र १ ।

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः । अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥ १ ॥ [८।७]

सूक्त ८९ (९४)

ऋषिः—सिन्धुद्वीपः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—३ अनुष्टुप्; ४ त्रिपदा निचृत्परोष्णिक् ॥ मन्त्र ४ ।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ २ ॥

इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥ ३ ॥

एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४॥ [८।८]

सूक्त ९० (९५)

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २ विराट्पुरस्ताद्-बृहती; ३ षट्पदा भुरिग् जगती ॥ मन्त्र ३ ।

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्। ओजो दासस्य दम्भय ॥१॥

वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै। म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥ २ ॥

यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः। अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः। यदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु ॥ ३ ॥

[८।६]

सूक्त ९१ (९६)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—चन्द्रमाः (?, इन्द्रः) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १ ॥ [९।१]

सूक्त ९२ (९७)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—चन्द्रमाः (?, इन्द्रः) ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु। तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ १ ॥ [९।२]

सूक्त ९३ (९८)

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र १।

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१॥

[९।३]

सूक्त ९४ (९९)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—सोमः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि। यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥ १ ॥ [९।४]

सूक्त ९५ (१००)

ऋषिः—कपिञ्जलः ॥ देवता—गृध्रौ ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २, ३ भुरिगनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः । उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥ १ ॥

अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव । कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥ २ ॥

आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत । अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमाञ्जभार ॥ ३ ॥ [९।५]

सूक्त ९६ (१०१)

ऋषिः—कपिञ्जलः । देवता—वयः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः । आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥ १ ॥ [९।६]

सूक्त ९७ (१०२)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१—४ त्रिष्टुप्; ५ त्रिपदाऽऽर्षी (?, त्रिपदाऽऽर्ची) भुरिग् गायत्री; ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; ७ त्रिपदा साम्नी भुरिग् जगती; ८ उपरिष्टाद् बृहती ॥ मन्त्र ८ ।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह । ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥ १ ॥

समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या । सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ २ ॥

यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे। जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥ ३ ॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः। वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥ ४ ॥

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ ५ ॥

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥ ७ ॥

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम्। स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥ ८ ॥ [६।७]

सूक्त ६८ (१०३)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—विराट् ॥ मन्त्र १ ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः। सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १ ॥ [६।८]

सूक्त ६६ (१०४)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वेदिः ॥ छन्दः—भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम्। होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥ १ ॥ [६।६]

सूक्त १०० (१०५)

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः। ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥ १ ॥ [६।१०]

सूक्त १०१ (१०६)

ऋषिः—यमः ।। देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते । सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ।। १ ।। [६।११]

सूक्त १०२ (१०७)

ऋषिः—प्रजापतिः ।। देवता—द्यावापृथिव्यादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—विराट्-पुरस्ताद्बृहती ।। मन्त्र १ ।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे । मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः ।। १ ।। [६।१२]

सूक्त १०३ (१०८)

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—आत्मा ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् । को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ।।१।। [१०।१]

सूक्त १०४ (१०९)

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—आत्मा ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् । बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ।। १ ।। [१०।२]

सूक्त १०५ (११०)

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र १ ।

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः । प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।। १ ।। [१०।३]

सूक्त १०६ (१११)

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—जातवेदाः, वरुणश्च ॥ छन्दः—बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १।

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः। ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥ [१०१४]

सूक्त १०७ (११२)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—सूर्यः, आपश्च ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः। आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् ॥ १ ॥ [१०१५]

सूक्त १०८ (११३)

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र २।

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने। प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥ १ ॥

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः। वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥ २ ॥ [१०१६]

सूक्त १०९ (११४)

ऋषिः—बादरायणिः ॥ देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः॥ छन्दः—१ विराट्पुरस्ताद्बृहती; २, ३, ५, ६ त्रिष्टुप्; ४, ७ अनुष्टुप् ॥ मंत्र ७।

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी। घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥ १ ॥

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च । यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च । ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥ ३ ॥

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर । वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥ ४ ॥

यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च । स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥ ५ ॥

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः । तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम । अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥ ७ ॥ [१०।७]

सूक्त ११० (११५)

ऋषिः—भृगुः । देवता—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१ गायत्री; २ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥ १ ॥

याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा । प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥ २ ॥

उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः । इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ [१०।८]

सूक्त १११ (११६)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—वृषभः ॥ छन्दः—पराबृहती त्रिष्टुप् ॥ मंत्र १ ।

इन्द्र॑स्य कु॒क्षिर॑सि सोम॒धान॑ आ॒त्मा दे॒वाना॑मु॒त मानु॑षाणाम् । इ॒ह प्र॒जा जं॑नय॒ यास्त॑ आ॒सु या अ॒न्यत्रे॒ह तास्ते॑ रमन्ताम् ॥ १ ॥ [१०।९]

सूक्त ११२ (११७)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आपः । छन्दः – १ भुरिगनुष्टुप्; २ अनुष्टुप् । मंत्र २ ।

शुम्भ॑नी॒ द्यावा॑पृथि॒वी अन्ति॑सुम्ने॒ महि॑व्रते । आप॑: स॒प्त सु॑स्रुवुर्दे॒वीस्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १ ॥

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒३॒॑दथो॑ वरु॒ण्या॒॑दु॒त । अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शा॒द् विश्व॑स्माद् देवकिल्बि॒षात् ॥ २ ॥ [१०।१०]

सूक्त ११३ (११८)

ऋषिः—भार्गवः । देवता—तृष्टिका ॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्; २ शङ्कुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ॥ मन्त्र २ ।

तृष्टि॑के॒ तृष्ट॑वन्दन॒ उद॒मूं छि॑न्धि तृष्टिके । यथा॑ कृ॒तद्वि॒ष्टासो॒ऽमुष्मै॑ शे॒प्याव॑ते ॥ १ ॥

तृष्टासि॑ तृष्टि॒का वि॒षा वि॑षात॒क्य॒॑सि । परि॑वृक्ता॒ यथास॑स्यृष॒भस्य॑ व॒शेव॑ ॥ २ ॥ [१०।११]

सूक्त ११४ (११९)

ऋषिः—भार्गवः । देवता—अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

आ ते॑ ददे व॒क्षणा॑भ्य॒ आ ते॒ऽहं हृद॑याद् ददे । आ ते॒ मुख॑स्य॒ संका॑शा॒त् सर्वं॑ ते॒ वर्च॒ आ द॑दे ॥ १ ॥

प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः । अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥ २ ॥ [१०।१२]

सूक्त ११५ (१२०)

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—सविता, जातवेदाः । छन्दः—१, ४ अनुष्टुप्, २ ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत । अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥ १ ॥

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् । अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥ २ ॥

एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः । तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥ ३ ॥

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव । रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥ ४ ॥ [१०।१३]

सूक्त ११६ (१२१)

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—चन्द्रमाः (?, ज्वरः) । छन्दः—१ परोष्णिक् २ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप् (? आर्च्युष्णिक्) एकावसाना ॥ मन्त्र २ ।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे । नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥ १ ॥

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्ववव्रतः ॥ २ ॥ [१०।१४]

सूक्त ११७ (१२२)

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पथ्या बृहती ॥ मन्त्र १ ।

सूक्त ११८ (१२३)

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—सोमादयः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥ [१०।१६]

॥ इति सप्तमं काण्डम् समाप्तम् ॥



ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ अष्टमं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—आयुः ।। छन्दः—१ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; २, ३, १७—२१ अनुष्टुप्; ४, ९ १५, १६ प्रस्तारपङ्क्तिः; ५, ६, १०, ११ त्रिष्टुप्; ७ त्रिपाद्-विराड्गायत्री; ८ विराट् पथ्या बृहती; १२ पञ्चपदा जगती; १३ त्रिपदा भुरिङ्-महाबृहती; १४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती ।। मंत्र २१ ।

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् । इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ।। १ ।।

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् । उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।। २ ।।

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः । उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ।। ३ ।।

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः । मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ।। ४ ।।

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः । सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ।। ५ ।।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि । आ हि रोहेमममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ।। ६ ।।

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन्। विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्। आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ ८ ॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ। अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि। तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ १० ॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्तरा रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते। वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥ ११ ॥

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर। रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च। अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥१२॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्। गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः। मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥ १५ ॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा। जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः। उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ १६ ॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वां मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥ १७ ॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥

उत् त्वां मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वां व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥ १९ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ २० ॥

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् । अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥ २१ ॥ [१।१]

सूक्त २

ऋषिः— ब्रह्मा ॥ देवता— आयुः ॥ छन्दः—१, २, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः; ४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ५, १०, १६, १८, २०, २३—२५, २७ अनुष्टुप्; ६, १५ पथ्या पङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः; १२, २२, २८ पुरस्ताद् बृहती; १३ त्रिष्टुप्; १४ षट्पदा जगती; १७ त्रिपादनुष्टुप्; १९ उपरिष्टाद् बृहती; २१ सतः पङ्क्तिः ॥ मंत्र २७ ।

आरभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते । असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥ १ ॥

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वां हरामि शतशारदाय । अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥ २ ॥

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव । यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ ३ ॥

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि । नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥ ४ ॥

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि । कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् । त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु । भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ ७ ॥

अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु । अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥ ८ ॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् । आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥९॥

यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् । पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥ १० ॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति । वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् । रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥ १२ ॥

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः । यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥ १३ ॥

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ। शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे। शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४ ॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि। तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५ ॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्। शिवं ते तन्वे३ तत कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु। शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ। एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ १८ ॥

यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः। यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥ १९ ॥

अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि। अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥ २० ॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ २१ ॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि। वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥ २२ ॥

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् । तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥ २३ ॥

सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः । न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ २५ ॥

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः । अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ २६ ॥

ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः । मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥ २७ ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा । अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥ २८ ॥ [१।२]

सूक्त ३

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—६, ८—११, १३, १६, १८—२०, २४ त्रिष्टुप्; ७, १२, १४, १५, १७, २१ भुरिक् त्रिष्टुप्; २२, २३ अनुष्टुप्; २५ बृहतीगर्भा जगती; २६ गायत्री। मन्त्र २६।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १ ॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः । आ जिह्वया मूरदेवान रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥ २ ॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च । उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् । प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥ ४ ॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् । उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५ ॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः । ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥ ६ ॥

उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् । अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७ ॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति । तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः । हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥ ९ ॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा । तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥ १० ॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति । तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥ ११ ॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः । मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥ १२ ॥

परां शृणीहि तपसा यातुधानान् परांग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
पराचिषा मूरंदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुंचतः शृणीहि ॥ १३ ॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः। वाचास्तेनं
शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥ १४ ॥
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो
अघ्न्याया भरंति क्षीरमंग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ १५ ॥
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः। परैणान्
देवः संविता ददातु परां भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ ॥ १६ ॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः। पीयूषमग्ने
यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥ १७ ॥
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूरानन्नु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ १८ ॥
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात्। प्रति त्ये ते
अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुंचतो दहन्तु ॥ १९ ॥
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने। सखा
सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २० ॥
तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान्।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ २१ ॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं
भङ्गुरावतः ॥ २२ ॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि । अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥ २३ ॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा । प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥ २४ ॥

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते । ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥ २५ ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥२६॥
[२।१]

सूक्त ४

ऋषिः—चातनः ॥ देवता—इन्द्रसोमादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१—७, १५, १८, २१ जगती; ८—१४, १६, १७, १९, २२, २४, त्रिष्टुप्; २०, २३ भुरिक् त्रिष्टुप् २५ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र २५ ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः । परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥ १ ॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव । ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् । यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् । उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः । तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना । यां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥ ६ ॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः । इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥ ७ ॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः । आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

ये पाकशंस विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः । अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् । रिपुः स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः । प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते । तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् । हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३ ॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने । किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥ १४ ॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य । अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह । इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना । वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वीच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन । वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि । प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् । शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् । अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥ २१ ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् । सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः । पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् । विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ २४ ॥

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् । रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

[२।२]

सूक्त ५

ऋषिः—शुक्रः ॥ देवताः—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ६ उपरिष्टाद् बृहती; २ त्रिपदा विराड् गायत्री; ३ भुरिक् जगती; ४, १२ १३, १६, १८ अनुष्टुप्; ५ भुरिक् संस्तारपङ्क्तिः; ७, ८ ककुम्मत्यनुष्टुप्; ९ पुरस्कृतिर्जगती; १० त्रिष्टुप्; ११ पथ्या पङ्क्तिः; १४ षट्पदा जगती; १५ पुरस्ताद् बृहती; १९ जगती गर्भा त्रिष्टुप्; २० विराड्गर्भाऽऽस्तार पङ्क्तिः; २१ विराट् त्रिष्टुप्; २२ सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक् शक्वरी ॥ मन्त्र २२ ।

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १ ॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः । प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी । अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः । ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः । ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ५ ॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् । ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ६ ॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते । सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥ ७ ॥

स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा । अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥ ८ ॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः । उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥ ९ ॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः । प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥ ११ ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा । अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १२ ॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः । सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १३

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् । अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणे ऽजयत् । मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥ १४ ॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति । प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५ ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः । प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् । इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥ १७ ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥ १८ ॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे। तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि ॥ १९ ॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये। इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥ २० ॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्। दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥ २१ ॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा। स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥ २२ ॥ [३।१]

सूक्त ६

ऋषिः—मातृनामा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—१, ३—९, १३, १८—२६ अनुष्टुप्; २ पुरस्ताद् बृहती; १० षट्पदा जगती; ११, १२, १४, १६ पथ्या पङ्क्तिः; १५ सप्तपदा शक्वरी; १७ सप्तपदा जगती ॥ मन्त्र २६ ॥

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ। दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥ १ ॥

पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्। आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा। कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥ ३ ॥

दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः। अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥ ४ ॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः। अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥ ४ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्। अरायांञ्छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥ ६ ॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च। बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः। ॥ ७ ॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम्। छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥ ८ ॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्। तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः। कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः। तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति। क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः। अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥ १२ ॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति। स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः। आपाकेष्ठाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा। खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः। तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥ १५ ॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः। अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥ १६ ॥

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम्। उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम्। पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७ ॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते। पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥

ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते। स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥ १९ ॥

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्। गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥ २० ॥

पवीनसात् तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात्। प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥

द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः। वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥ २२ ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः। गर्भान् खादन्ति केशवा- स्तानितो नाशयामसि ॥ २३ ॥

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि। बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥ २४ ॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् । आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥ २५ ॥

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् । वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥ २६ ॥ [३।२]

सूक्त ७

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—भैषज्यं, आयुष्यं ओषधयः ।। छन्दः—१, ७, ८, ११, १३, १६—२३, २७ अनुष्टुप्; २ उपरिष्टाद् भुरिग् बृहती; ३ पुरउष्णिक्, ४ पञ्चपदा परानुष्टुबतिजगती; ५, १०, २५ पथ्या पङ्क्तिः; ६ विराड्गर्भा भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः; ९ द्विपदाऽऽर्ची भूरिगनुष्टुप्; १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १४ उपरिष्टाद् निचृद् बृहती; [१५ त्रिष्टुप् २४ षट्पदा जगती;] २६ निचृदनुष्टुप्; २८ भुरिगनुष्टुप् ।। मन्त्र २८ ।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः । असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥

त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि । यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥ २ ॥

आपो अग्रं दिव्या ओषधयः । तास्ते यक्ष्ममेनस्यमङ्गादङ्गादनीनशन् ॥ ३ ॥

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि। अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥ ४ ॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम्। तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्। अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम। यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७ ॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः। ध्रुवाः सहस्रनाम्नी-भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥ ८ ॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः। व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥९॥

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः। अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥ १० ॥

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः। त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥ ११ ॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत् पर्णं मधुमत पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥ १२ ॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः। ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः। अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥ १४ ॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः। गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥ १५ ॥

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि। भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥ १६ ॥

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च। ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥ १७ ॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा। अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥ १८ ॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम। यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥ २० ॥

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः। यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥ २१ ॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि। अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥ २२ ॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्। सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २३ ॥

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः। वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः। मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २४ ॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः । तावतास्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥ २५ ॥

यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥ २६ ॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

उत त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत । अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २८ ॥

सूक्त ८

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च ॥ छन्दः—१, ५, १३—१८ अनुष्टुप्; २, ८—१०, २३ उपरिष्टाद् बृहती; ३ विराड् बृहती; ४ बृहती पुरस्तात्प्रस्तारपङ्क्तिः; ६ आस्तारपङ्क्ति; ७ विपरीतपादलक्ष्मा चतुष्पदाऽति जगती; ११ पथ्या बृहती; १२ भुरिगनुष्टुप्; १९ पुरस्ताद् विराड् बृहती; २० पुरस्तान्निचृद् बृहती; २१ त्रिष्टुप्; २२ चतुष्पदा शक्वरी; २४ त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा जगती ॥ मन्त्र २४।

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः । यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥

पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् । धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥ २ ॥

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून खदिराजिरम् । ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥

परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः । क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः । तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥ ५ ॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः । तेन शत्रूनभि सर्वान न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥ ६ ॥

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य । तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् । तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥ ८ ॥

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना । श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥ ९ ॥

मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः । मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥ १० ॥

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत । परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११ ॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा । रुद्रा एके वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२ ॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा । मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ ॥ १४ ॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् । दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १५ ॥

इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे । अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥ १६ ॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः । भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥ १७ ॥

मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् । इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥ १८ ॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा । बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् । अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥ २० ॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः । मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ २१ ॥

दिशश्चतस्रोश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः । द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोभीशवोन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् । इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा । इमे जयन्तु परामी जयन्ताम्
स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः । नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥ २४ ॥
[४१२]

सूक्त ९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ६, ७, १०, १३, १५—२१, २४ त्रिष्टुप्; २ पङ्क्तिः; ३ आस्तारपङ्क्तिः; ४, ५, २३, २५, २६ अनुष्टुप्; ८, ११, १२, २२ जगती, ९ भुरिक् त्रिष्टुप्, १४ चतुष्पदाऽतिजगती ॥ मंत्र २६।

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः । वत्सः
कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् । ब्रह्मैनद् विद्यात
तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥
बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता । बृहद् बृहत्या
निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥ ४ ॥
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता । माया ह जज्ञे मायाया
मायाया मातली परि ॥ ५ ॥
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः । ततः
षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥ ६ ॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् । यस्या
व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् । विश्वं
मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः । क्रमान्
को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥१०॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा । महान्तो
अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते । सूर्यपत्नी सं
चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः । प्रजामेका
जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः । गायत्रीं
त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४ ॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च । पञ्च
दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति । षड्योगं
सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥ १६ ॥

षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः । सप्त
सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त। सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥

सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि । कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥ १९ ॥

कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते । त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये । अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१ ॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा । समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥

अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा । अपो मनुष्या३नोषधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना । अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः । यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥ २५ ॥

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः । यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥

॥ सूक्त १० (२) ॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता—विराट् ॥ छन्दः—१ आर्ची पङ्क्तिः; २, ४, ६, ८, १०, १२ याजुषी जगती; ३, ९ साम्न्यनुष्टुप्; ५ आर्च्यनुष्टुप्; ७, १३ विराड् गायत्री; ११ साम्नी बृहती ॥ मन्त्र १३ ।

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्यां जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥ (१)

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् । गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ २ ॥ (२-३)

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् । यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (४-५)

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् । यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (६-७)

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् । यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ (८-९)

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् । यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (१०-११)

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ (१२-१३) [५।२]

—:o:—

॥ १० (२) ॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता—विराट् ॥ छन्दः—१ त्रिपदा साम्न्यनुष्टुप्; २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद् विराड् बृहती; ३ एकपदा याजुषी गायत्री; ४ एकपदा साम्नी पङ्क्तिः; ५ विराड्गायत्री; ६ आर्च्यनुष्टुप्; ७ साम्नी पङ्क्तिः; ८ आसुरी गायत्री; ९ साम्न्यनुष्टुप्; १० साम्नी बृहती ॥ मन्त्र १० ।

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥ ८ ॥ (१)

तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभयं उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥ ९ ॥ (२)

तामुपाह्वयन्त ॥ १० ॥ (३)

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ११ ॥ (४)

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ १२ ॥ (५)

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ १३ ॥ (६)

ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ॥ १४ ॥ (७)

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ १५ ॥ (८)

ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ १६ ॥ (९)

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥ १७ ॥ (१०)

—:०:—

॥ १० (३) ॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता—विराट् ॥ छन्दः—१ चतुष्पदा विराडनुष्टुप्; २ आर्ची त्रिष्टुप्; ३, ५, ७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४, ६, ८ आर्ची बृहती ॥ मन्त्र ८।

सोदक्रामत सा वनस्पतीनागच्छत् । तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत्। तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥ १८ ॥ (१२)

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् । तां पितरोऽघ्नत सा मासि

समभवत् । तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (३-४)

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् । तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ २० ॥ (५-६)

सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् । तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् । तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ २१ ॥ (७-८)

—:०:—

॥ १० (४) ॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता—विराट् ॥ छन्दः—१, ५ चतुष्पदा साम्नी जगती; २, ६, १० साम्नी बृहती; ३, १४ साम्न्युष्णिक्; ४, ८ आर्च्यनुष्टुप्; ७ आसुरी गायत्री; ९, १३ चतुष्पदोष्णिक् ११ प्राजापत्यानुष्टुप्; १२, १६ आर्ची त्रिष्टुप् १५ विराड् गायत्री ॥ मन्त्र १६ ।

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति । तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् । तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् । तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २२ ॥ (१-४)

सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति । तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् । तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् । तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥ (५-८)

सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २४ ॥ (६-१३)

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति। तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम्। तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक्। तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥२५॥ १३-१६

—:०:—

॥१० (५)॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता —विराट् ॥ छन्दः —१, १३ चतुष्पदा साम्नी जगती; २, ३ साम्न्युष्णिक् ४, १६ आर्च्यनुष्टुप् ५ चतुष्पदा प्राजापत्या जगती; ६ साम्नी बृहती त्रिष्टुप्; ७, ११ विराड्गायत्री; ८ आर्ची त्रिष्टुप्; ९ चतुष्पदोष्णिक् १०, १४ साम्नी बृहती; १२ त्रिपदा ब्राह्मी भुरिग् गायत्री, १५ साम्न्यनुष्टुप् ॥ मन्त्र १६।

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति। तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम्। तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक्। तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥ (१-४)

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥ तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्

पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥ तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद । २७ ॥ (५-८)

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति । तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् । तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् । तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २८ ॥ (९-१२)

सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति । तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् । तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् । तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ २९ ॥ (१३-१६)

—:०:—

॥ १० (६) ॥

ऋषिः—अथर्वाचार्यः ॥ देवता—विराड् ॥ छन्दः—१ द्विपदा विराड्गायत्री; २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप् ॥ मंत्र ४।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥ ३० ॥ (१)

न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥३१॥ (२)

यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३२ ॥ (३)

विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥३३॥ (४) [५।२]

॥ इति अष्टमं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ नवमं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—मधु, अश्विनौ ।। छन्दः—१, ४, ५ त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः; ३ पराऽनुष्टुप् (?); ६ अतिशक्वरीगर्भा यवमध्या महाबृहती; ७ अतिजगतीगर्भा यवमध्या महाबृहती; ८ बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः; ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्तिः; १० पुरउष्णिक् पङ्क्तिः; ११—१३, १५, १६, १८, १९ अनुष्टुप्; १४ पुरउष्णिक; १७ उपरिष्टाद् विराड्बृहती; २० भुरिग् विष्टारपङ्क्तिः; २१ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप् एकावसाना); २२ द्विपदा ब्राह्मी पुरउष्णिक्, २३ द्विपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; २४ षट्पदाऽष्टिः ।। मन्त्र २४ ।

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे । तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः । यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः । अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३ ॥

माता‌दित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः । हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः । तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥ ५ ॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः । ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ । ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् । त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥

यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः । ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि । अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः । एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः । एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि । एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि । एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥ १७ ॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु । सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा वर्चस्वतीं वाचमा-वदानि जनाँ अनु ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि । तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥ २० ॥

पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति । ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति । मधुमतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥

यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति । तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति । अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥ [१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषि:—अथर्वा ॥ देवता—काम: ॥ छन्द:—१—४, ६, ९, १०, १९, २४, २५ त्रिष्टुप्; ५ अतिजगती; ७, १४, १५, १७, १८, २१, २२ जगती; ८ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्ति:; ११, २०, २३ भुरिक् त्रिष्टुप्; १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती ॥ मन्त्र २५ ।

स॒प॒त्न॒हन॑मृष॒भं घृ॒तेन॒ काम॑ं शिक्षामि ह॒विषाज्ये॑न । नी॒चैः स॒पत्ना॒न् मम॑ पादय॒ त्वम॒भिष्टु॑तो मह॒ता वी॒र्ये॑ण ॥ १ ॥

यन्मे॒ मन॑सो॒ न प्रि॒यं न चक्षु॑षो॒ यन्मे॒ बभ॑स्ति॒ नाभि॒नन्द॑ति । तद् दु॒ःष्वप्न्यं॒ प्रति॑ मुञ्चामि स॒पत्ने॒ काम॑ं स्तु॒त्वोद॒हं भिदे॑यम् ॥ २ ॥

दु॒ःष्वप्न्य॑ं काम दुरि॒तं च॑ कामाप्र॒जस्ता॑मस्व॒गत॒ामव॑र्तिम् । उ॒ग्र ईशा॑नः प्रति॑ मुञ्च॒ तस्मि॒न् यो अ॒स्मभ्य॑मंहूर॒णा चिकि॑त्सात् ॥ ३ ॥

नु॒दस्व॑ काम॒ प्र णु॑दस्व॒ का॒माव॑र्तिं यन्तु॒ मम॒ ये स॒पत्ना॑ः । तेषा॑ं नु॒त्ताना॑मध॒मा तमा॑ंस्यग्ने॒ वास्तू॑नि॒ निर्द॑ह॒ त्वम् ॥ ४ ॥

सा ते॑ काम दुहि॒ता धे॒नुरु॑च्यते॒ यामा॒हुर्वाच॑ं क॒वयो॑ वि॒राज॑म् । तया॑ स॒पत्ना॒न् परि॑ वृङ्ग्धि॒ ये मम॒ पर्ये॑नान् प्रा॒णः प॒शवो॒ जीव॑नं वृणक्तु ॥ ५ ॥

काम॒स्येन्द्र॑स्य॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञो॒ विष्णो॒र्बले॑न सवि॒तुः स॒वेन॑ । अ॒ग्नेर्हो॒त्रेण॒ प्र णु॑दे स॒पत्ना॑ञ्छ॒म्बीव॒ नाव॑मुद॒केषु॒ धीर॑ः ॥ ६ ॥

अध्य॑क्षो वा॒जी मम॒ काम॑ उ॒ग्रः कृ॒णोतु॒ मह्य॑मसप॒त्नमे॒व । विश्वे॑ दे॒वा मम॑ ना॒थं भ॑वन्तु॒ सर्वे॑ दे॒वा हव॒मा य॑न्तु म इ॒मम् ॥ ७ ॥

इ॒दमाज्य॑ं घृ॒तव॑ज्जुषा॒णाः काम॑ज्येष्ठा इ॒ह मा॑दयध्वम् । कृ॒ण्वन्तो॒ मह्य॑मसप॒त्नमे॒व ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः । तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् । निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥ १० ॥

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् । मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥ ११ ॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् । न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्य१ः स्वानाम् । उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥१४॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् । उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् । तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥

येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय । तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे। तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २० ॥

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः। ततस्त्व-मसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २१ ॥

यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २२ ॥

ज्यायान निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २३ ॥

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २४ ॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे। ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥ २५ ॥

[१,२]

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ।। देवता—शाला ।। छन्दः—१— ५,८—१४, १६, १८–२०, २२—२४ अनुष्टुप्; ६ पथ्या पङ्क्तिः; ७ परउष्णिक्; १५ पञ्चपदातिशक्वरी; १७ प्रस्तारपङ्क्तिः; २१ आस्तारपङ्क्ति २५, ३१ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्; २७—३० त्रिपदा प्रतिष्ठानाम गायत्री; मन्त्र ३१ ।

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत । शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः । बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥ २ ॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् । परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥

वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च । पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च । इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥

यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् । प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥ ६ ॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः । सदो देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति । अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् । उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता। यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्। प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः। नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते। विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह। विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः। तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता। विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी। मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥ १७ ॥

इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन्। वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम्। इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ १९ ॥

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः । तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥ २० ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते । अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्र-कामं भरामसि ॥ २४ ॥

प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२५॥

दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २६ ॥

प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २७ ॥

उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २८ ॥

ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३० ॥

दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥३१॥ [२।१]

—:०:—

सूक्त ४

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता – ऋषभः ॥ छन्दः—१—५, ७, ६, २२ त्रिष्टुप्; ६, १०, २४ जगती; ८ भुरिक् त्रिष्टुप्; ११—१७, १६, २०. २३ अनुष्टुप्; १८ उपरिष्टाद् बृहती; २१ आस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र २४।

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्। भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ १ ॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी। पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति। तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम्। वत्सो जरायुः प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ॥ ४ ॥

देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य। सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्। शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥६॥

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः। इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव एतु दत्तः ॥ ७ ॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्। बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः। सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः। अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत्। तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ। अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२ ॥

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः। पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्। उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः। देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्। ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा । शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां

यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः । जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो

ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः । पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे

गोष्ठेऽव पश्यते ॥ १९ ॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् । तत् सर्वमनु मन्यन्तां

देवा ऋषभदायिन ॥ २० ॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् । अयं धेनुं सुदुघां नित्य-

वत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् । आयु-

रस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः । उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र

तव वीर्यम् ॥ २३ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु । मा

नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥

[२।२]

—:०:—

सूक्त ५

ऋषिः – भृगुः ।। देवता – अजः पञ्चोदनः ।। छन्दः—१, २, ५ – ६, ११ – १३, १५, १६, २६ त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा पुरोऽतिशक्वरी जगती; ४, १० जगती; १४, १७, २७—२९ अनुष्टुप्; ३० ककुम्मत्यनुष्टुप्; १९ त्रिपदानुष्टुप्; १८, ३७ त्रिपदा विराड्गायत्री; २०—२२, २५ पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद् बार्हता भुरिक् (?); २३ पुरउष्णिक्; २४ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद् बार्हता विराड् जगती; ३१ सप्तपदाऽष्टिः; ३२—३५ दशपदा प्रकृतिः; ३६ दशपदाऽऽकृतिः; ३८ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् (एकावसाना) ।। मन्त्र ३७ ।

आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् । ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः । माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् । पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥

उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् । अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः । अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ७ ॥

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि । ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ८ ॥

अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः । पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति । पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति । अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति । स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवो३ऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १२ ॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् । इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु । १३ ॥

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् । तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः । स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥

अजो३ऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः । तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य । सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् । अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

सत्यं च ऋतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः । एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् । सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति । इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति । स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् । पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् । वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥ २९ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥ ३० ॥

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद । एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतीं कुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद । संयतीं संयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद । पिन्वतीं पिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते । एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।

निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद। उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद। अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्च चौदनान्। सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥
[३।१]

—:०:—

सूक्त ६

ऋषिः — ब्रह्मा ॥ देवता — अतिथिः; विद्या ॥ छन्दः — १ नागीनामत्रिपाद् गायत्री; २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्; ४, ९ आर्च्यनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ त्रिपदा साम्नी जगती; ८ याजुषी त्रिष्टुप्; १० साम्नी भुरिग्बृहती; ११, १४—१६ साम्न्यनुष्टुप्; १२ विराड् गायत्री; १३ साम्नी निचृत् पङ्क्तिः; १७ त्रिपदा भुरिग् विराड् गायत्री ॥ मन्त्र १७।

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २ ॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥ ४ ॥

या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६ ॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८ ॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥ ९ ॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥ १० ॥

यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११ ॥

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥ १२ ॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥ १३ ॥

ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेऽशव एव ते ॥ १४ ॥

यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥ १५ ॥

शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥ १६ ॥

स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणी-
यमेव कृष्णाजिनम् ॥ १७ ॥

—:०:—

द्वितीय पर्याय: (शंकर पाण्डु० सं० के अनुसार सूक्त ७)

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—अतिथिः; विद्या ।। छन्दः—१ विराट् पुरस्ताद् बृहती; २, १२ साम्नी त्रिष्टुप्; ३ आसुरी त्रिष्टुप; ४ साम्न्युष्णिक्; ५ साम्नी बृहती; ६ आर्च्यनुष्टुप्; ७ पञ्चपदा विराट् पुरस्ताद् बृहती; [८], ९ साम्न्युनुष्टुप; १० त्रिपदाऽऽर्ची त्रिष्टुप्; ११ भुरिक् साम्नी बृहती; ३ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः ।। मन्त्र १३ ।

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति (१) ॥ १८ ॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते (२) ॥ १९ ॥

उप हरति हवींष्या सादयति (३) ॥ २० ॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मञ्जुहोति (४) ॥ २१ ॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण (५) ॥ २२ ॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः । (६) ॥२३॥

स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य (७) ॥ २४ ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति (८) ॥ २५ ॥

सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति (९) ॥ २६ ॥

सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति (१०) ॥ २७ ॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति (११) ॥ २८ ॥

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति (१२) ॥ २९ ॥

योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः (१३) ॥ ३० ॥

पर्याय-३ (शं० पा० के अनुसार सूक्त ८)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अतिथिः विद्या ॥ छन्दः—१—६, ९ त्रिपदा पिपीलिकामध्या गायत्री; ७ साम्नी बृहती; ८ पिपीलिकमध्योष्णिक् ॥ मन्त्र ९ ।

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (१) ॥ ३१ ॥

पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (२) ॥३२॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (३) ॥ ३३ ॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (४) ॥ ३४ ॥

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति (५) ॥ ३५ ॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (६) ॥ ३६ ॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् (७) ॥ ३७ ॥

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् (८) ॥ ३८ ॥

एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् (६) ॥ ३९ ॥

पर्याय—४ (शं० पा० के अनुसार सूक्त ९)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अतिथिः; विद्या ॥ छन्दः–१, ३, ५, ७ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; २, ४, ६, ८ त्रिपदा गायत्री; ९ भुरिक् प्राजापत्या गायत्री; १० चतुष्पदा प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र १० ।

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति (१)
यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे (२) ॥४०॥
स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति (३)
यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे (४) ॥४१॥
स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति (५)
यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे (६) ॥४२॥
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति (७)
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे (८) ॥ ४३ ॥

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति (९)
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति (१०) ॥ ४४ ॥

पर्याय—५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता–अतिथिः; विद्या ॥ छन्दः—१ साम्न्युष्णिक्; २ पुरउष्णिक्; ३, ५, ७ (अनयोरुत्तरार्धः), १० भुरिक् साम्नी बृहती; ४, ६, ९ साम्न्यनुष्टुप; ५ (पूर्वार्धः) त्रिपदा निचृद् विषमानामगायत्री; ७ (पूर्वार्धः) त्रिपदा विराड् विषमानामगायत्री; ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति (१)

बृहस्पतिरूर्जयोद् गायति त्वष्टा पुष्टया प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् (२)

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद (३) ॥ ४५ ॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति (४)

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद (५) ॥ ४६ ॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति (६)

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद (७) ॥ ४७ ॥

अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद् गायति (८)

उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् (९)

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद (१०) ॥ ४८ ॥

पर्याय—६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अतिथिः; विद्या ॥ छन्दः—३ आसुरी गायत्री; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३, ५ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; ४ एकपदा प्राजापत्या गायत्री; ६—११ आर्ची बृहती; १२ एकपदा आसुरी जगती; १३ याजुषी त्रिष्टुप्; १४ एकपदासुर्युष्णिक् ॥

यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् (१) ॥ ४९ ॥

यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् (२) ॥ ५० ॥

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव

॥ ५१ ॥

एव ते (३) ॥ ५२ ॥

तेषां न कश्चनाहोता (४)

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव

॥ ५३ ॥

तदुपावैति (५)

यत् संभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्

(६) ॥ ५४ ॥

स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम्

(७) ॥ ५५ ॥

स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् (८)

॥ ५६ ॥

स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् (९)

॥ ५७ ॥

स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् (१०)

॥ ५८ ॥

स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् (११)

॥ ५९ ॥

स उपहूत उपहूतः (१२) ॥ ६० ॥

आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् (१३) ॥ ६१ ॥

ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एवं वेद (१४) ॥ ६२ ॥ [३।२]

—:०:—

सूक्त ७

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—गौः ॥ छन्दः—१ आर्ची बृहती ६, ८ आसुरी गायत्री; ७ त्रिपदा पिपीलिकामध्या निचृत् गायत्री; ९, १३ साम्नी गायत्री; १० पुरउष्णिक्; ११, १२, १७, २५ साम्न्युष्णिक्; १८, २२ एकपदाऽऽसुरी जगती; १९ एकपदाऽऽसुरी पङ्क्तिः; २० याजुषी जगती; २१ आसुर्यनुष्टुप् २३ एकपदाऽऽसुरी बृहती; २४ साम्नी भुरिग्बृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप्; (इहानुक्तपादा द्विपदाः) ॥ मंत्र २६

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥

श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदा मनष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥

अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥

तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥ (२१)

[४।१]

—:o:—

सूक्त ८

ऋषिः—भृग्वाङ्गिराः ॥ देवता— सर्वशीर्षामयापाकरणम ॥ छन्दः— १—११, १३, १४, १६—२० अनुष्टुप्; १२ अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक्; १५ विराड्नुष्टुप्; २२ विराट पथ्याबृहती; २२ पथ्यापङ्क्तिः ॥ मंत्र २२।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥

कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ २ ॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ३ ॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् । तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ६ ॥

य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके । यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ७ ॥

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ८ ॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् । यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥ (२२)

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ ११ ॥

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत ॥ १२ ॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १३ ॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १४ ॥

याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १५ ॥

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १६ ॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १७ ॥

या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १८ ॥

ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत ॥ १९ ॥

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत ॥ २० ॥

पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः । अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥ २१ ॥

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः । उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥ २२ ॥ (२३) [४।२]

—:०:—

सूक्त ९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आदित्यः; अध्यात्मम् ॥ छन्दाः—१—११, १३, १५, १७, १९—२२ त्रिष्टुप्; १२, १४, १६, १८ जगती ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः । तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा । त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः । सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति । भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः । शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि । वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ६ ॥

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् । वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ७ ॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे। सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः। अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त। मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥ १० ॥

(२४)

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः ॥ ११ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः। कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१५॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥१७॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण। कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः। इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २१ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति। एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२२॥ (२५) [५।१]

—:o:—

सूक्त १०

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—गौः, विराट्, अध्यात्मम्; २३ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, ७, १४, १७, १८ जगती; २, २६, २७ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३—६, ८—१३, १५, १६, १९, २०, २२, २३, २५, २८ त्रिष्टुप्; २१ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; २४ चतुष्पदा पुरस्कृतिर्भुरिगतिजगती ॥ मन्त्र २८।

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत। यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्। वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २ ॥

जगता सिन्धुं दिव्य[स्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्। गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्वा प्र रिरिचे महित्वा ॥ ३ ॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्। श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभी[द्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ४ ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्। दुहाम् अश्विभ्यां पयो अघ्न्येय सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ५ ॥

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ। सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ॥ ६ ॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥७॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्या[नाम्। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥

विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ९ ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्। स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥ १० ॥ (२६)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ११ ॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ १२ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१३॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१४॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि । यदा
मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ १५ ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता शश्वन्ता
विषूचीना वियन्ता न्यश्न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ १६ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि । ते
धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ १७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न
वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥ १८ ॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् । त्रिपाद् ब्रह्म
पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम । अद्धि
तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २० ॥ (२७)

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ २१ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति । त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू[दुः ॥ २२ ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत । गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥ २३ ॥

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः । विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण । उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् । विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या[वदन्ति ॥ २७ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥२८॥ (२८) [५।२]

—:०:—

* श्री गणेशाय नमः *

अथ दशमम् काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—प्रत्यङ्गिरसः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ महाबृहती; २ विराण्नाम गायत्री; ३—८, १०, ११, १४, २१, २५—२७, ३०, ३१ अनुष्टुप्; ९ पथ्यापङ्क्तिः; १२ पङ्क्ति; १३ उरोबृहती, १५ चतुष्पदा विराड् जगती; १६, १८ त्रिष्टुप्; १७, २४ प्रस्तारपङ्क्तिः; १९ चतुष्पदा जगती; २० विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; २२ द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् (एकावसाना); २३ त्रिपदा भुरिक् विषमा गायत्री; २८ त्रिपदा गायत्री; २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती; ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदातिजगती ॥ मन्त्र ३२ ।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः । सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ १ ॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा । सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ २ ॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता । जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते । प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५ ॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः । प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ ६ ॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् । तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥ ७ ॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया । तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः । शंभ्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥ ९ ॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम । अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः । संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् । मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥ १२ ॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् । एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव । कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४ ॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिंण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनीं विश्वरूपा कुरूटिनी ॥ १५ ॥
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व । परेणेहि
नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥ १६ ॥
वातं इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७ ॥
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः । अग्नौ
वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ १८ ॥
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् । तदेतु यत आभृतं
तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥ (२)
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव । इन्द्राग्नी अस्मान्
रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥ २१ ॥
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२ ॥
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते । दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा । सेतोऽष्टा-
पदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि । जानीहि कृत्ये
कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६ ॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा। उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ। यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥ २९ ॥
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव। सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ ३० ॥
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्। मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्। एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥
(३) [१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—नारायणः ॥ देवता—पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् (३१, ३२ साक्षात् ब्रह्मप्रकाशिन्यौ) ॥ छन्दः—१—४, ७, ८ त्रिष्टुप्; ५. ६, १०, १२—२७, २९—३३ अनुष्टुप्; ६, ११ जगती; २८ भुरिग्बृहती ॥ मन्त्र ३३।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ। केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य । जङ्घे निर्ऋत्य न्य॒दधुः क्व॑स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् । श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३ ॥

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य । कति स्तनौ व्य॒दधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति । अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् । येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् । स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् । चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः । आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९ ॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः । राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥ (४)

को अस्मिन्नापो व्य॒दधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः । तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥११॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च। गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२ ॥

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु। समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥ १३ ॥

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे। को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत्। बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे। उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति। मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम्। केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम्। केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥ १९ ॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम्। केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥ (५)

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्। ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः। केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः। ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता। केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता। ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः। तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥ (६) [१।२]

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वरणमणिः, वनस्पतिः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ६, १०, १२ अनुष्टुप्; २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८, १३, १४ पथ्यापङ्क्तिः; ११, १६ भुरिगनुष्टुप्; १५, १७—२५ षट्पदा जगती ॥ मन्त्र २५ ।

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा। तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ १ ॥

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्। अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥ २ ॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः। स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥ ३ ॥

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्। अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः। यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्। परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिवरणो वारयिष्यते ॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्। मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम्। ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः। असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः। तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥ (७)

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः। स मे शत्रून वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥ ११ ॥

इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः। स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥ १२ ॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा। एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्। एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १४ ॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः। एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः । य एनं पशुषु दिप्संन्ति ये चांस्य राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथांस्मिन् तेज आहितम् । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥ १७ ॥

यथा यशंश्चन्द्रमस्यादित्ये चं नृचक्षंसि । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥ १८ ॥

यथा यशंः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥१९॥

यथा यशंः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥२०॥

(८)

यथा यशंः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशंः । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥२१॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वंषट्कारे यथा यशंः । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥२२॥

यथा यशो यजंमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥२३॥

यथा यशंः प्रजापंतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यंच्छतु तेजंसा मा समुंक्षतु यशंसा समंनक्तु मा ॥२४॥

यथा॑ दे॒वेष्व॒मृतं॒ यथै॑षु स॒त्यमाहि॑तम् । ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भूतिं॒ नि य॑च्छतु तेज॑सा मा॒ समु॑क्षतु यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा ॥२५॥ (६)

[२।१]

—:०:—

सूक्त ४

ऋषिः—गरुत्मान् ॥ देवता—सर्पविषापाकरणम् ॥ छन्दः—१ पथ्यापङ्क्तिः; २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री; ३, ४ पथ्याबृहती; ५—७, ९—११, १३—१५, १७—२०, २२, २४, २५ अनुष्टुप्; ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्; १२ भुरिग्गायत्री; १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री; २१ ककुम्मत्यनुष्टुप्; २३ त्रिष्टुप्; २६ षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २६ ।

इन्द्र॑स्य प्रथ॒मो रथो॑ दे॒वाना॒मप॑रो॒ रथो॒ वरु॑णस्य तृ॒तीय॒ इत् । अही॑नामप॒मा रथः॑ स्था॒णुमा॑र॒दथा॑र्षत् ॥ १ ॥

द॒र्भः शो॒चिस्त॒रूण॑क॒मश्व॑स्य॒ वारः॑ परु॒षस्य॒ वारः॑ । रथ॑स्य॒ बन्धु॑रम् ॥ २ ॥

अव॑ श्वेत प॒दा ज॑हि॒ पूर्वे॑ण॒ चाप॑रेण च । उ॒द॒प्लु॒तमि॑व॒ दार्वही॑नामर॒सं वि॒षं वारु॒ग्रम् ॥ ३ ॥

अ॒रं॒घु॒षो नि॒मज्यो॒न्मज्य॒ पुन॑रब्रवीत् । उ॒द॒प्लु॒तमि॑व॒ दार्वही॑नामर॒सं वि॒षं वारु॒ग्रम् ॥ ४ ॥

पै॒द्वो ह॑न्ति कस॒र्णीलं॑ पै॒द्वः श्वि॒त्रमु॒तासि॒तम् । पै॒द्वो र॑थ॒र्व्याः शिरः॒ सं बि॑भेद पृदा॒क्वाः ॥ ५ ॥

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि । अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् । इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥ ८ ॥

अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥ १० ॥ (१०)

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः । इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा । जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥ १२ ॥

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् । हिरण्ययीभिरभ्रिभि-गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः । स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योऽभा ॥ १६ ॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् । स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥ १७ ॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव । तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥ १८ ॥

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्य॑निजमहेर्विषम् ॥ १९ ॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥ २० ॥ (११)

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥ २१ ॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् । कान्दाविषं कनक्कं निरैत्वैतु ते विषम् ॥ २२ ॥

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः । येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥ २३ ॥

तौदी नामासि कन्या॑ घृताची नाम वा असि । अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय । अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥

आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् । दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥ २६ ॥ (१२)
[२।२]

—:०:—

सूक्त ५

ऋषिः—१—२४ सिन्धुद्वीपः; २५—३६ कौशिकः; ३७—४१ ब्रह्मा; ४२—५० विहव्यः ॥ देवता—१—२४ आपः; २५—४१ मन्त्रोक्ताः; ४२—५० प्रजापतिः ॥ छन्दः—१—५ त्रिपदा पुरोभिकृतिः ककुम्मतीगर्भा पङ्क्तिः; ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती; ७—१४ पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती (११, १४ पथ्या पङ्क्तिः); १५—२१ दशपदा त्रैष्टुब्गर्भाऽतिधृतिः (१९, २० कृतिः); २२, २३, ४२, ४३, ४५—४७ अनुष्टुप्; २४ त्रिपदा विराड् गायत्री; २५—३५ षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वरी; ३६ पञ्चपदाऽतिशक्वरातिजागत गर्भाऽष्टिः; ३७ विराट्; पुरस्ताद्बृहती; ३८ पुरउष्णिक्; ३९, ४१ आर्षीगायत्री; ४० विराड् विषमा गायत्री; ४४ त्रिपदा गायत्रीगर्भाऽनुष्टुप्; [४८, ४९] ५० त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ५० ॥

विनि०—जल को वज्र बनाकर शत्रु मारण कर्म ।

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥ १ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ २ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ ३ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥ ४ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥ ६ ॥

अग्नेर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ८ ॥

सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ९ ॥

वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १० ॥ (१३]

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ११ ॥

यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १२ ॥

पितृणां भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १३ ॥

देवस्य सवितुर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १४ ॥

यो व आपोऽपां भागोऽ्प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १५ ॥

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मः। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १६ ॥

यो व आपोऽपां वत्सोऽ्प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १७ ॥

यो व आपोऽपां वृषभोऽ्प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १८ ॥

यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽ्प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १९ ॥

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽ३प्स्वं१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ २० ॥ (१४)

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वं१न्तर्यजुष्या देवयजनाः । इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि । तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ २१ ॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम । आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥ २२ ॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन । अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥ २३ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् । प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥ २४ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः । पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २५ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः । अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २६ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः । दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २७ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः । दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २८ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः । आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २९ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः । ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३० ॥ (१५)

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः । यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३१ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः । ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३२ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः। अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३३ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः। कृषिमनु वि क्रमेहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३४ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः। प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य[ष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः। इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्। सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३७ ॥

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते। ता मे द्रविणं यच्छन्त ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८ ॥

सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥

ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ।४०। [१६]

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै । व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि । इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि । सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥ ४४ ॥

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु । तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ ४७ ॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः । मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥ ४८ ॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि । परार्चिषा मूरदेवां छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ ४९ ॥

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् । सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥ (१७)

[३।१]

—:०:—

सूक्त ६

ऋषिः—बृहस्पतिः ।। देवता—वनस्पतिः; फालमणिः; ३ आपः ।। छन्दः—१, ४, २१ गायत्री; २, ३, १८, १९, २२, २८—३०, ३२—३४ अनुष्टुप्। ५, ३१ षट्-पदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी; ७—९ अष्टपदाऽष्टिः; १० नवपदा धृतिः; ११, २०, २३—२७ पथ्या पङ्क्तिः। १२—२७ त्र्यवसाना (?; सप्तपदा) शक्वरी; ३५ पञ्चपदाऽनु (त्र्यनु) ष्टुब्गर्भा जगती ।। मन्त्र ३५ ।

अ॒रा॒ती॒योर्भ्रातृ॑व्यस्य दु॒र्हार्दो॑ द्वि॒ष॒तः शिरः॑। अपि॑ वृश्चा॒म्योज॑सा ॥१॥

वर्म॑ म॒ह्यम॒यं म॒णिः फाला॑ज्जा॒तः क॑रिष्यति। पू॒र्णो म॒न्थेन॒ माग॑म॒द् रसे॑न स॒ह वर्च॑सा ॥ २ ॥

यत् त्वा॑ शि॒क्वः प॒राव॑धी॒त् तक्षा॒ हस्ते॑न॒ वास्या॑। आप॑स्त्वा॒ तस्मा॑-ज्जीव॒लाः पु॒नन्तु॒ शुच॑यः॒ शुचि॑म् ॥ ३ ॥

हिर॑ण्यस्रग॒यं म॒णिः श्र॒द्धां य॒ज्ञं महो॒ दध॑त्। गृ॒हे व॑सतु॒ नोऽति॑थिः ॥४॥

तस्मै॑ घृ॒तं सुरां॒ मध्वन्न॑मन्नं क्षदामहे। स नः॑ पि॒तेव॑ पु॒त्रेभ्यः॒ श्रेयः॑-श्रेय॒श्चिकि॑त्सतु॒ भूयो॑भूयः॒ श्वः॒श्वो दे॒वेभ्यो॑ म॒णिरेत्य॑ ॥ ५ ॥

यमब॑ध्ना॒द् बृह॒स्पति॑र्म॒णिं फालं॑ घृत॒श्चुत॑मु॒ग्रं ख॑दि॒रमोज॑से। तम॒ग्निः प्रत्य॑मुञ्चत॒ सो॑ अस्मै दुह॒ आज्य॒ं भूयो॑भूयः॒ श्वः॒श्वस्तेन॒ त्वं द्वि॑ष॒तो ज॑हि ॥ ६ ॥

यमब॑ध्ना॒द् बृह॒स्पति॑र्म॒णिं फालं॑ घृत॒श्चुत॑मु॒ग्रं ख॑दि॒रमोज॑से। तमिन्द्रः॒ प्रत्य॑मुञ्च॒तौज॑से वी॒र्या॒य कम्। सो अ॑स्मै॒ बल॒मिद् दु॑हे॒ भूयो॑भूयः॒ श्वः॒श्वस्तेन॒ त्वं द्वि॑ष॒तो ज॑हि ॥ ७ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे। सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ८ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः। सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयो-भूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ९ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः। सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १० ॥

(१८)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ११ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः। स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १२ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः। सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १३ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः । स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १४ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् । सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १५ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन् । स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १६ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् । स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १७ ॥

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत । प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥ १९ ॥

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत । तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २० ॥ (१९)

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्य[कल्पयत् । तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥ २६ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥ २८ ॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये । अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् । असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥ ३० ॥ (२०)

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः । यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते । स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३१॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा । स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् । तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः । तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

(२१) [३।२]

—:०:—

सूक्त ७

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता—स्कम्भः; अध्यात्मम् ॥ छन्दः— १ विराड् जगती, २, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३—६, ९, ३८, ४२, ४३ त्रिष्टुप् ७, १३ परोष्णिक्; १०, १४, १६, १८, १९ उपरिष्टाद् बृहती; ११, १२, १५, २०, २२, ३९ उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती; १७ षट्पदा जगती; २१ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; २३—३०, ३७, ४० अनुष्टुप्; ३१ मध्ये ज्योतिर्जगती; ३२, ३४, ३६ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; ३३ पराविराडनुष्टुप्; ३५ चतुष्पदा जगती; ४१ आर्षी त्रिपदा गायत्री; ४४ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; पञ्चपदा निचृद् पदपङ्क्तिर्वा (एकावसाना) ॥ मन्त्र ४४ ।

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् । क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा । कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् । कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३ ॥

क्वं॑ प्रेप्स॑न् दीप्यत ऊर्ध्वो अ॒ग्निः क्वं॑ प्रेप्स॑न् पवते मा॒तरिश्वा॑ ।
यत्र॒ प्रेप्स॑न्तीरभि॒यन्त्या॒वृतः॑ स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥४॥

क्वा॑र्धमा॒साः क्व॑ यन्ति॒ मासाः॑ संवत्स॒रेण॑ स॒ह संवि॑दा॒नाः । यत्र॒ यन्त्यृ॒तवो॒ यत्रा॑र्त॒वाः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ ५ ॥

क्वं॑ प्रेप्स॑न्ती यु॒वती विरू॑पे अहोरा॒त्रे द्रवतः संवि॑दा॒ने । यत्र॒ प्रेप्स॑न्तीरभि॒यन्त्याप॑ः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ ६ ॥

यस्मि॑न्त्स्त॒ब्ध्वा प्र॒जाप॑तिर्लो॒कान्त्सर्वाँ॒ अधा॑रयत् । स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ ७ ॥

यत् प॑र॒ममव॒मं यच्च॑ मध्य॒मं प्र॒जाप॑तिः ससृ॒जे वि॒श्वरू॑पम् । किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश॒ तत्र॒ यन्न प्रावि॑श॒त् किय॒त् तद् ब॑भूव ॥ ८ ॥

किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश भू॒तं किय॑द् भवि॒ष्यद॒न्वाशय॑ेऽस्य । एकं॒ यदङ्ग॒मकृ॑णोत् सहस्र॒धा किय॑ता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश॒ तत्र॑ ॥ ९ ॥

यत्र॑ लो॒कांश्च॒ कोशां॒श्चापो॒ ब्रह्म॒ जना॑ वि॒दुः । अस॑च्च॒ यत्र॒ सच्चा॒न्तः स्क॒म्भ तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ १० ॥ (२२)

यत्र॒ तप॑ः परा॒क्रम्य॑ व्र॒तं धा॒रय॒त्युत्त॑रम् । ऋ॒तं च॒ यत्र॑ श्र॒द्धा चापो॒ ब्रह्म॑ स॒माहि॑ताः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ ११ ॥

यस्मि॒न् भूमि॑र॒न्तरि॑क्षं॒ द्यौर्यस्मि॒न्नध्याहि॑ता । यत्रा॒ग्निश्च॒न्द्रमा॒ः सूर्यो॒ वात॒स्तिष्ठ॒न्त्यार्पि॑ताः स्क॒म्भ तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ १२ ॥

यस्य॒ त्रय॑स्त्रिंशद् दे॒वा अङ्गे॒ सर्वे॑ स॒माहि॑ताः । स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः ॥ १३ ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही। एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते। समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः। यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्। यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्। ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्। अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत। विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १९ ॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२०॥ (२३)

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः। उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः। भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा। निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे। एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्। एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे। तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः। स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥ २८ ॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्। स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम्। इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥ (२४)

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३२ ॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं१ तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् । दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् । स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश । ॥ ३५ ॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे । सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३६ ॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः । किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥ ३७ ॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ३८ ॥

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा । यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।३९।

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना । सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद । स वै गुह्यः प्रजापतिः ।४१।

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् । प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥ ४२ ॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् । पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥ ४३ ॥

इ॒मे म॒यूखा॒ उप॑ तस्तभु॒र्दिवं॒ सामा॑नि चक्रु॒स्तस॑राणि॒ वात॑वे ॥ ४४ ॥
(२५) [४ १]

—:०:—

सूक्त ८

ऋषिः कुत्सः ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—१ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; २ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; ३, ४, ८, ६. १३, १६—१८, २४, २८, ३५, ३६, ४०, ४४ त्रिष्टुप्; ५ भुरिगनुष्टुप्; ६, १४, १९—२१, २३, २५; २६, ३१—३४, ३७, ३८, ४१, ४३ अनुष्टुप्; ७ पराबृहती; १० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ११ जगती; १२ पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भाऽऽर्षी पङ्क्तिः; १५ २७ भुरिग्बृहती; २२, पुरउष्णिक्; २६ द्व्युष्णिगगर्भाऽनुष्टुप्; ३० भुरिक् त्रिष्टुप्; ३९ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; ४२ (त्रिपदा, विराड् गायत्री ॥ मन्त्र ४४ ।

यो भू॒तं च॒ भव्यं॑ च॒ सर्वं॒ यश्चा॑धि॒तिष्ठ॑ति । स्व॑१॒र्यस्य॑ च॒ केव॑लं॒ तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑ ॥ १ ॥

स्क॒म्भेने॒मे विष्ट॑भिते॒ द्यौश्च॒ भूमि॑श्च तिष्ठतः । स्क॒म्भ इ॒दं सर्व॑मा॒त्मन्व॒द् यत् प्रा॒णन्नि॑मि॒षच्च॒ यत् ॥ २ ॥

ति॒स्रो ह॑ प्र॒जा अ॑त्या॒यमा॑य॒न् न्य॑१॒न्या अ॒र्कम॒भितो॑ऽविशन्त । बृ॒हन् ह॑ तस्थौ॒ रज॑सो वि॒मानो॒ हरि॑तो॒ हरि॑णी॒रा वि॑वेश ॥ ३ ॥

द्वाद॑श प्र॒धय॑श्च॒क्रमेकं॒ त्रीणि॒ नभ्या॑नि॒ क उ॒ तच्चि॑केत । तत्राह॑ता॒स्त्रीणि॑ श॒तानि॑ श॒ङ्कवः॑ ष॒ष्टिश्च॒ खीला॒ अवि॑चाचला॒ ये ॥ ४ ॥

इ॒दं स॑वितर्वि॑ जा॑नीहि॒ षड् य॒मा एक॑ एक॒जः । तस्मि॑न् हापि॒त्व॑मि॑च्छन्ते॒ य ए॑षा॒मेक॑ एक॒जः ॥ ५ ॥

आ॒विः सन्निहि॑तं॒ गुहा॒ जर॒न्नाम॑ म॒हत् प॒दम् । तत्रे॒दं सर्व॒मार्पि॑त॒मेज॑त् प्रा॒णत् प्रति॑ष्ठितम् ॥ ६ ॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति। अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्। तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥ (२६)

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत्। तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते। ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्य]म्। पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥

ये अर्वाङ् मध्यं उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति। आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

सहस्राहण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्। स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति। प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु। स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥ (२७)

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वराभरत्। चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु। यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः। अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम्। तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते। ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी । त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ २७ ॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः । एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते । उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव । मही देव्युषसो विभाति सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥ (२८)

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता । तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति । देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् । वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः । अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः । य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव । दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥

यो विद्यात् सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः। सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥

वेदाहं सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः। सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्य: । यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्। बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे। साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा। इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४॥ (२९) [४।२]

—:०:—

सूक्त ९

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता— शतौदना ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २—११, १३—२४ अनुष्टुप्; १२ पथ्यापङ्क्तिः; २५ द्व्युष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप्; २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भा जगती; २७ पञ्चपदाऽतिजागताऽनुष्टुब्गर्भा शक्वरी ॥ मन्त्र २७।

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्। इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातु ॥ १ ॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते । एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये । शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते । प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः । अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

स ताँल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः । हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा । आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः । लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥ (३०)

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति । पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि। तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू। आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी। आमिक्षां० ।१४।

यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका। आमिक्षां० ॥ १५ ॥

यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च त गुदाः। आमिक्षां० ॥१६॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते। आमिक्षां० ॥१७॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम्। आमिक्षां० ॥ १८ ॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्। आमिक्षां० ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः। आमिक्षां० ॥२०॥

(३१)

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्। आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः। आमिक्षां० ॥२२॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः। आमिक्षां० ।२३।

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये। आमिक्षां० ॥ २४ ॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ। तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥ २५ ॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः । यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि । यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥ (३२) [५।१]

—:०:—

सूक्त १०

ऋषिः– कश्यपः ॥ देवता—वशा ॥ छन्दः—१ ककुम्मत्यनुष्टुप्; २—४, ७, ६, ११—१२, २५, २८, ३०, ३३, ३४ अनुष्टुप्; ५ पञ्चपदाऽतिजागतानुष्टुभं (?) स्कन्धोग्रीवो बृहती; ६, ८, १० विराडनुष्टुप; २३ बृहती; २४ उपरिष्टाद्बृहती; २६ आस्तारपङ्क्तिः; २७ शङ्कुमत्यनुष्टुप्; २६ त्रिपदा विराड्गायत्री; ३१ उष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप; ३२ विराट् पथ्या बृहती ॥ मन्त्र ३४ ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः । बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः । शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः । शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः । वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः । ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका। वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा। ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे। तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि। इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥ ९ ॥

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वं ऋषभोऽह्वयत्। तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥ १० ॥ (३२)

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे। इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा। अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता। वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः। वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा। वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥

अभीवृंता हिरंण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि । अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यंस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथौ स्वधा । अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

वशा माता राजन्य॑स्य वशा माता स्वधे तव । वशायां यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदंचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि । ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे । पाजस्या॑ज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥ (३४)

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव । आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे । ततस्त्वा ब्रह्मोदंह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्व॑ः । ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्य॑स्या बन्धुः ॥ २३ ॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी । तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥ २४ ॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् । वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते । वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् । तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि । तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः । आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः । वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये । ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते । य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते । ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत । वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥ (३५) [५१२]

॥ इति दशमं काण्डम् समाप्तम् ॥

—:०:—

* श्री गणेशाय नमः *

अथैकादश काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—ब्रह्मौदनः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पङ्क्तिः; २, ५ बृहतीगर्भा विराट् त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती; ४, १५, १६, ३१ भुरिक् त्रिष्टुप्; ६ उष्णिक्; ७, १२—१४, १६, २२, २३, २८, ३०, ३२—३४ त्रिष्टुप्; ८ (त्रिपदा) विराड् गायत्री; ९ शाक्वरातिजागतगर्भा जगती; १० पुरोति जगती; विराड् जगती; ११ जगती; १७, २१, २४—२६, ३७ विराड् जगती; १८ अतिजागतगर्भा परातिजागती विराडतिजगती; २० अतिजागतगर्भा पराशाक्वरा चतुष्पदा भुरिग् जगती; २७ अतिजागतगर्भा भुरिग् जगती; २९ भुरिग् जगती; ३५ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक्; ३६ पुरोविराट् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३७ ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा । सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ । अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः । सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३ ॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः । तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् । अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्। इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६ ॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय। ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७ ॥

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना। अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु। अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥ ९ ॥

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः। त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥ (१)

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा। परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः। श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय। तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३॥

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व। सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः। अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्। आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु॥ १६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः। अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्॥ १७॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे। अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम्।१८।

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके। पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि॥ १९॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः। अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव॥ २०॥ (२)

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम्। श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि॥ २१॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि। मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज॥ २२॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे। अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम्॥ २३॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन्। सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु॥ २४॥

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद। सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः॥२५॥

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्। ऋषी-
नार्षेयांस्तपसोऽधि जातान्ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥
इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा। इदं धनं
नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्। एतं
शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ २९ ॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्। येन
रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्यो॒म ॥ ३० ॥ (३)
बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ ३१ ॥
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्। पुरीषिणः
प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र। अग्निर्मे गोप्ता
मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥
यज्ञं दुहानं सदमित प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्। प्रजा-
मृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ। सुकृतां लोके सीद तत्र नौ
संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् । एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् । तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्व१रारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

(४) [१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—भवादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ परातिजागता विराड् जगती, २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा पथ्या जगती; ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक् ४ ५, ७, १३, १५, १६, २१, अनुष्टुप् ६ आर्षी गायत्री; ८ महाबृहती; ९ आर्षी त्रिष्टुप्; १० पुरःकृतिः त्रिपदा विराट् त्रिष्टुप्; ११ पञ्चपदा जगतीगर्भा विराट् शक्वरी; १२ भुरिक् त्रिष्टुप्; १४, १७—१९, २३, २६, २७ [त्रिपदा] विराड् गायत्री; २० भुरिक् गायत्री; २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती; २४, २९ जगती; २५ पञ्चपदातिशक्वरी; २८ त्रिष्टुप्; ३० चतुष्पदा उष्णिक्; ३१ विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३१ ।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् । प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥

पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव। त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते। दुद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना। रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः। मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते। तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९ ॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्। तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (५)

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः। स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्। रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२ ॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति। पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय। ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा । भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् । मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् । पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते । अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः । मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥ (६)

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु । अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति । अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् । तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४॥

शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं
पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना । अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् । तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥

भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ । यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः । मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥

नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः । नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥३१॥

(७) [१।२]

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—बार्हस्पत्यौदनः ॥ छन्दः—१, १४ आसुरी गायत्री; २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३, ६, १०, आसुरी पङ्क्तिः ४, ८ साम्न्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५ साम्न्युष्णिक्; ७, १९—२२ प्राजापत्यानुष्टुप्; ९, १७, १८ आसुर्यनुष्टुप्; ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती; १६, २३ आसुरी बृहती;

२४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ आर्च्युष्णिक्; २७, २८ साम्नी बृहती; २९ भुरिक् साम्नी बृहती; ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अल्पशः पङ्क्तिरुत याजुषी ॥ मन्त्र ३१ ।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥

कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे ॥ १८ ॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥

नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥

यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥२६॥

त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥ २७ ॥

पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥

ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥ (८)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः०··· य एवं वेद ॥ ३३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । अन्धो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः०··· य एवं वेद ॥ ३४ ॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।०··· य एवं वेद ।३५।

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । ०···य एवं वेद ।३६।

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् । ०···य एवं वेद ।३७।

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं०···वेद ॥ ३८ ॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा०···वेद ॥ ३९ ॥

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्०।···वेद ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। पृथिव्योरसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्०।···य एवं वेद ।४१।

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं०···य एवं वेद ॥ ४२ ॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं०···भवति य एवं वेद ॥ ४३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः०···य एवं वेद ॥ ४४ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं०—य एवं वेद ॥ ४५ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं०···य एवं वेद ।४६।

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं०···य एवं वेद ।४७।

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं०···एवं वेद ॥ ४८ ॥

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानो|नायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥ (६)

पर्याय ५ शं० पा० के अनुसार सूक्त ५

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१ ॥

एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ।५२।

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥

न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥ न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥ (१०) [२।१]

—:०:—

सूक्त ४ (शं० पाण्डु० अनुसार ६)

ऋषिः—भार्गवो वैदर्भिः ॥ देवता—प्राणः ॥ छन्दः—१ शङ्कुमत्यनुष्टुप्; २—७, ६—१३, १६—१६, २३—२५ अनुष्टुप्; ८ पथ्या पङ्क्तिः; १४ निचृदनुष्टुप्; १५ भुरिगनुष्टुप्; २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; २१ मध्येज्योतिर्जगती; २२ त्रिष्टुप्; २६ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप् । मन्त्र २६ ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः । प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः । सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् । आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते । पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी । अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् । प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥ (११)

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते । प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते । यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा । यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत । ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः । सर्वे तस्मै बलिं हरान् अमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः । एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः । स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥ (१२)

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् । यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥२१॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा । अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः । अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते । न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि । अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥ (१३) [२।२]

—:o:—

सूक्त ५ (शं० पा० के अनुसार ७)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—ब्रह्मचारी ॥ छन्दः—१ पुरोऽतिजागता विराड्गर्भा त्रिष्टुप्; २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ३ उरोबृहती; ४, ५, २४ त्रिष्टुप्; ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; ७ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्; ८ पुरोऽतिजागता विराड्-जगती; ९ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; १० भुरिक् त्रिष्टुप्; ११, १३ जगती; १२ शाक्वर-गर्भा चतुष्पदा विराडतिजगती; १४, १६—२२ अनुष्टुप्; १५ पुरस्ताज्ज्योति-स्त्रिष्टुप्; २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा त्रिष्टुप्; २५ आर्च्युष्णिक् (एकावसाना); २६ मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २६ ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति । स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे । गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३ ॥

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् । तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् । गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च । ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८ ॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च । ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य । तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ।१०। (१४)

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे । तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार । ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।१२।

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति । तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः । जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥ १४ ॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ । तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः । प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥ १८ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९ ॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः। संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥ (१५)

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये। अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति। तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्। तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः। प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४ ॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६॥ (१६) [३।१]

—:०:—

सूक्त ६ (शं० पाण्डु के अनुसार ८)

ऋषिः – शन्तातिः ॥ देवता – अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१—२२ अनुष्टुप्; २३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; ॥ मन्त्र २३ ।

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः । इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् । अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् । अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा । विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः । आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः । सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः । शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः । इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥ ९ ॥

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्। समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १० ॥ (१७)

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्। पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये। पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १२ ॥

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः। अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः। दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन्। मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्। समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥

एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत। पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो० ··· ॥ १८ ॥

विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः। विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो० ··· ॥ १९ ॥

सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः। सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो०··· ॥ २० ॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी। भूतानि सर्वा संगत्य ते नो०... ॥ २१ ॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः। संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥ २२ ॥

यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम्। तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥ (१८) [३।२]

—:०:—

सूक्त ७ (शं० पा० के अनुसार ९)

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता —उच्छिष्टः अध्यात्मम् ॥ छन्दः—१—५, ७—२०, १३ —२७ अनुष्टुप्; ६ पुरउष्णिग् बार्हतपराऽनुष्टुप्; २१ स्वराडनुष्टुप्; २२ विराट् पथ्या बृहती ॥ मन्त्र २७।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः। लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश। नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्। हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्। उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥ ६ ॥

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः। अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह। उत्सन्ना यज्ञाः सत्त्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः। दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः। ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥ (१९)

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह। षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥ ११ ॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः। साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः। उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः। आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः। बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः। स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च। भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः। संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः। उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह। उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥ (२०)

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा। अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः। अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥ (२१) [४।१]

—:०:—

सूक्त ८ (शं० पा० के अनुसार १०)

ऋषिः—कौरुपथिः ।। देवता—मन्युः; अध्यात्मम् ।। छन्दः—१—३२, ३४ अनुष्टुप्; ३३ पथ्या पङ्क्तिः ।। मन्त्र ३४ ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि। क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे। त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २ ॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत ॥ ३ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या। व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥

अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः। इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे । तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः । यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत । कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत । त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा । पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥ (२२)

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् । शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् । अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२ ॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् । सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् । पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥ १४ ॥

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः । त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥ १५ ॥

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् । येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती । ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७ ॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः । गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः । जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् । बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥ (२३)

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः । क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च । शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥ २२ ॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्य]म् । शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये । हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये । शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या। व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः। चित्तानि सर्वे सङ्कल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः। गुह्याः शुक्राः स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्। रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह। शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे। अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते। सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति। अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३ ॥

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम्। तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४ ॥ (२४) [४१२]

सूक्त ९ (शं० पा० के अनुसार ११)

ऋषिः—काङ्कायनः ॥ देवता—अर्बुदिः ॥ छन्दः—१ सप्तपदा विराट् शक्वरी; २, ५—८, १०, १२, १३, १८—२१ अनुष्टुप्; ३ परोष्णिक्; ४ उष्णिग् बृहती-गर्भा परात्रिष्टुप् षट्पदाऽतिजगती; ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापङ्क्तिः; १५, २२, २४, २५ सप्तपदा शक्वरी; १६ पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १७ त्रिपदा गायत्री ॥ मन्त्र २६ ।

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च । असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि । सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् । संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् । अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही । ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् । तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु । विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती। पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः। ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ९ ॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः। पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥ (२५)

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे। निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन्न रदिते अर्बुदे तव ॥ ११ ॥

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज। उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि। मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः। अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे। अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम्। सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १५ ॥

खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्। य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये। सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्कॉं असृङ्मुखान्। स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः। जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे। अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्। अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥ (२६)

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु। शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान् मोत मित्रिणः ॥ २१ ॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये। तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः। सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ २२ ॥

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम्। यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः। गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन्। सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ २४ ॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः। ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः। ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ २५ ॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्। इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥ (२७) [५।१]

—:०:—

सूक्त १० (शं० पा० के अनुसार १२)

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—त्रिषन्धिः ॥ छन्दः—१ विराट् पथ्याबृहती; २ षट्-पदा त्रिष्टुब्गर्भाऽतिजगती; ३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ४ विराडनुष्टुप्; ५—७, १०, ११, १४, १५, १८—२०, २३, २४ अनुष्टुप्; ८ विराट् त्रिष्टुप्। ९ पुरोविराड् त्रिष्टुप्; ९ पुरोविराड् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १२ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; १३ षट्पदा जगती; १६ षट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप्त्रिष्टुब्गर्भा शक्वरी; १७ पथ्या-पङ्क्तिः; २१ त्रिपदा गायत्री; २२ विराट् पुरस्ताद् बृहती; २५ ककुम् (उष्णिक्); २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र २७।

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह। सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह। ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः। त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः। क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ ३ ॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु। त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह। अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी। कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६ ॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु । त्रिषंधेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति । श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८ ॥
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते । तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥ ९ ॥
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः । असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥ (२८)
येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः । त्रिषंधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥
सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया । बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् । तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् । इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषंधेराहुतिः प्रिया । संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे । तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७ ॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥ (२९)

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥२१॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि । ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः । सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् । य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् । तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषंधिना ॥ २७ ॥ (३०) [५।२]

॥ इत्येकादशमं काण्डम् समाप्तम् ॥

—:o:—

अथ द्वादशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—भूमिः ॥ छन्दः—१, ३, १७, २६, ३१, ५५, ६० त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिष्टुप; ४—६, १०, ३८ षट्पदा जगती, ७ प्रस्तार पङ्क्तिः; ८, ११ षट्पदा विराडष्टिः; ९ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्; १२, १३, १५, ३७ पञ्चपदा शक्वरी; १४ महाबृहती; १६, २१ साम्नी त्रिष्टुप्; १८ षट्पदा त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी; १९ उरोबृहती; २० विराडुरोबृहती; २२ षट्पदा विराडतिजगती; २३ पञ्चपदा विराडतिजगती; २४ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती; २५ सप्तपदोष्णिगनुष्टुब्गर्भा शक्वरी; २६—२८, ३३, ३५, ३९, ४०, ५०, ५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप्; ५३ पुरोबार्हतानुष्टुप; ३० (त्रिपदा) विराड् गायत्री; ३२ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप; ३४ षट्पदा त्रिष्टुब्बृहतीगर्भातिजगती; ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; ४१ षट्पदा ककुम्मती शक्वरी; ४२ स्वराडनुष्टुप्; ४३ विराडास्तारपङ्क्ति; ४४, ४५, ४९ जगती; ४६ षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भा पराशक्वरी; ४७ षट्पदोष्णिगनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी; ४८ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्; ५१ षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी ५२ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा परातिजगती; ५७ पुरोतिजागता जगती; ५८ पुरस्ताद् बृहती; ६१ पुरोबार्हता त्रिष्टुप्; ६२ परा विराट् (?; निचृत) त्रिष्टुप् ॥

मन्त्र ६३ ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु। नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्। गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी। वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्। सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः। यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥
(१)

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् । शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु । अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् । अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥ (२)

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता । तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा। पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः। पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः। पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥ (३)

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत। स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम ॥ ३२ ॥

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना। तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्। उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे। मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः । ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

यापं सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्व१न्तः । परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥ (४)

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यै᳡लबाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः । भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते । प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे । वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये। क्रिमिजिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः। पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥ (५)

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि। यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्। वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि। वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्। आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्। ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत। मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा। त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती। भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्। भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना। यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्। संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥ (६) [१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—भृगुः ।। देवता—अग्निः; मन्त्रोक्ता; २१—३३ मृत्युः ।। छन्दः—१, ४, १०, ११, २१—३३, ५३ त्रिष्टुप्; २, ५, १२—१५, १७, १९, २० ३४—३६, ३८, ३९, ४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप्; ३ आस्तारपङ्क्तिः; ६ भुरिगार्षी पङ्क्तिः ७, ४५ जगती; ८, ४८, ४९ भुरिक् त्रिष्टुप्; ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; १६ ककुम्मती पराबृहत्यनुष्टुप्; १८ निचृदनुष्टुप्, ३७ पुरस्ताद् बृहती; ४० पुरस्ताद् ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४२ त्रिपदा भुरिगार्ची गायत्री; ४४ द्विपदाऽऽर्वी बृहती; ४६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; (४२, ४४, ४६ एकावसाना); ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती; ५० उपरिष्टाद् विराड् बृहती; ५२ पुरस्ताद् विराड् बृहती; ५५ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ५५ ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि । यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च । यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि । यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः । तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते । सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने । पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् । तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः । इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् । नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोके अपि भागो अस्तु ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः । मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥ (७)

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः । जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् । मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे । अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १३ ॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥ १४ ॥

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु । क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा । निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ १६ ॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत । तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् । अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे । अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥ २० ॥ (८)

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य । प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ । तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ २४ ॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् । यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः । अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २६ ॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्। अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २७ ॥

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः। अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः। त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९ ॥

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः। आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३० ॥ (६)

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्। अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि। स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु। मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३ ॥

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४ ॥

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या। अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५ ॥

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते। सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६ ॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे। छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ३७ ॥

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य। क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनु-विद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः। ब्रह्मैव विद्वानेष्योउ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम्। आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥ ४० ॥ (१०)

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः। पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥

अग्ने अक्रव्यान्निष्क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२ ॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात्। व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः। सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५ ॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्। तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्। आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः। अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९ ॥

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा। क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥ ५० (११)

ये श्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते। ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः। क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः। माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३ ॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्। तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश। परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५ ॥ (१२) [२।१]

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः – यमः ॥ देवता – स्वर्गः, ओदनः, अग्निः ॥ छन्दः—१, ४२, ४३ ४७ भुरिक् त्रिष्टुप्; २—७, ९—११, १४—१६, १८—२०, २३, २५—३३, ३५—३८, ४०, ४१, ४५, ४६, ४८—५४ त्रिष्टुप्; ८, १२, २१, २२, २४ जगती; १, ३,

१७ स्वराडार्षी पङ्क्तिः; ३४ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्; ३९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ४४ पराबृहती त्रिष्टुप्; ५५—६० सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वर-धार्त्यगर्भा अतिधृतयः (?); (५५, ५७—६० कृतिः) ॥ मन्त्र ६० ॥

पुमा॑न् पुं॒सोऽधि॑ तिष्ठ॒ चर्मे॑हि॒ तत्र॑ ह्वयस्व य॒त॒मा प्रि॒या ते॑। याव॑न्ता॒-व॑ग्रे प्रथ॒मं सं॑मे॒यथु॒स्तद् वां॒ वयो॑ यम॒राज्ये॑ समा॒नम् ॥ १ ॥

ताव॑द् वां॒ चक्षु॒स्तति॑ वी॒र्या॑णि॒ ताव॒त् तेज॑स्तति॒धा वाजि॑नानि॒। अ॒ग्निः शरी॑रं सचते य॒दैधोऽधा॑ प॒क्वान्मि॑थु॒ना सं भ॑वाथः ॥ २ ॥

सम॑स्मिंल्लो॒के समु॑ दे॒वयाने॒ सं स्मा॑ स॒मेतं॑ यम॒राज्ये॑षु। पू॒तौ प॒वित्रै॒रुप॒ तद् ह्व॑येथां॒ यद्य॒द् रेतो॒ अधि॑ वां सं॒ब॒भूव॑ ॥ ३ ॥

आप॑स्पुत्रासो अ॒भि सं वि॑शध्वमि॒मं जी॒वं जी॒वध॑न्याः स॒मेत्य॑। तासां॑ भजध्वम॒मृतं॒ यमा॒हुर्यमो॑द॒नं पच॑ति वां॒ जनि॑त्री ॥ ४ ॥

यं वां॑ पि॒ता पच॑ति॒ यं च॑ मा॒ता रि॒प्रान्निर्मु॑क्त्यै॒ शम॑लाच्च वा॒चः। स ओ॑द॒नः श॒तधा॑रः स्व॒र्ग उ॒भे व्या॑प॒ नभ॑सी महि॒त्वा ॥ ५ ॥

उ॒भे नभ॑सी उ॒भयां॑श्च लो॒कान् ये यज्व॑नाम॒भिजि॑ताः स्व॒र्गाः। तेषां॒ ज्योति॑ष्मा॒न् मधु॑मा॒न् यो अ॒ग्रे तस्मि॑न् पु॒त्रैर्ज॒रसि॒ सं श्र॑येथाम् ॥६॥

प्राचीं॑प्राचीं प्र॒दिश॒मा र॑भेथामे॒तं लो॒कं श्र॒द्दधा॑नाः सचन्ते। यद् वां॑ प॒क्वं परि॑विष्टम॒ग्नौ तस्य॒ गुप्त॑ये दम्पती॒ सं श्र॑येथाम् ॥ ७ ॥

दक्षि॑णां॒ दिश॑म॒भि नक्ष॑माणौ प॒र्याव॑र्तेथाम॒भि पात्र॑मे॒तत्। तस्मि॑न् वां य॒मः पि॒तृभिः॒ सं॑विदा॒नः प॒क्वाय॒ शर्म॑ बहु॒लं नि य॑च्छात् ॥ ८ ॥

प्र॒तीची॑ दि॒शामि॒यमिद् व॒रं यस्यां॒ सोमो॑ अधि॒पा मृ॑डि॒ता च॑। तस्यां॑ श्रयेथां सु॒कृतः॑ सचेथा॒मधा॑ प॒क्वान्मि॑थु॒ना सं भ॑वाथः ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्। पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥ (१३)

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु। सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११ ॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ। यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद। यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३ ॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः। आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः। स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥ १५ ॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श। त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६ ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम। गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७ ॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्य[स्य प्र वदासि वल्गु। वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम्। वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् । अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥ (१४)

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या । एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा । यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या । उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् । वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् । ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ।२५।

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् । शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः । ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः । असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ।२८।

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् । योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् । अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥ (१५)

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् । यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु । तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः । त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३ ॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै । उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु । तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् । वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् । वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः । तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः । सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः । सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ।४०। (१६)

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः । सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीऽच्छात् ॥ ४१ ॥

निधिं निधिपा अभ्येऽनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये । अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त । नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि । शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप । आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५ ॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् । मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया । कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७ ॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममान एति । अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति । धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९ ॥

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् । यावन्तो देवा दिव्याऽतपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५० ॥ (१७)

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये । क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१ ॥

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या । समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि । विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् । अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ।५६।

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ४७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥
(१८) [३।१]

सूक्त ४

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—वशा ॥ छन्दः—१—६, ८—१९, २१—३१, ३३—४१, ४३—५३ अनुष्टुप्; ७ भुरिगनुष्टुप्; २० विराडनुष्टुप्; ३२ उष्णिग्बृहतीगर्भाऽनुष्टुप् ४२ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५३ ।

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत । वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति । य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २ ॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति । बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम्। तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति। अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते। लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति। ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्। ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति। ततोऽपरूपं जायते तस्माद्व्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा। तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १० ॥ (१६)

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा। ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति। आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः। हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा। तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥

स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि। यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती। वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम्। उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत। उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति। नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम्। तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥ (२०)

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम्। देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम्। अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम्। दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत। तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम्। ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च। तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम्। चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्। आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः। आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति। अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्ञ्याय कृणुते मनः ॥ ३० ॥ (२१)

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति। ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१ ॥

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः। दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२ ॥

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः। तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३ ॥

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये। एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४ ॥

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति। सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे। अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६ ॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा। वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७ ॥

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम्। अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि। अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते। अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥ (२२)

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य। तासां विलिप्त्यं भीमामदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति। तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः। तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३ ॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा । तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४४ ॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा । कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा । तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४६ ॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा । ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः । वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः । एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः । तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः । इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति । रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥

यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ ॥ (२३) [४।१]

सूक्त ५ (पर्याय १)

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—१ प्राजापत्यानुष्टुप्; २ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्; ४ आसुर्यनुष्टुप्; ५ साम्नी पङ्क्तिः; (६ साम्न्युष्णिक्) ॥ मन्त्र ६ ।

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥ १ ॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

अप क्रामति सूनृता वीर्य१ पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥ (२४)

—:०:—

सूक्त ५ (पर्याय २)

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—(७ साम्नीत्रिष्टुप्;) ८ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; ९ आर्च्यनुष्टुप्; १० उष्णिक्; ११ आर्ची निचृत्पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ५ ।

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥१॥ (७)

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ।२।

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥३॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ ४ ॥ (१०)

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥ (११) (२५)

सूक्त ५ (पर्याय ३)

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—१२ विराड् विष्मा गायत्री; १३ आसुर्यनुष्टुप्; १४, २६ साम्न्युष्णिक्; १५ गायत्री; १६, १७: १९, २० प्राजापत्यानुष्टुप्; १८ याजुषी जगती; २१, २५ साम्न्यनुष्टुप्; २२ साम्नी बृहती; २३ याजुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७ आर्च्युष्णिक् ॥ मन्त्र १६ ।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ।१। (१२)

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ २ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ ३ ॥ (१४)

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्बीश आ द्यति ॥ ४ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ ५ ॥ (१६)

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ ६ ॥

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ ७ ॥ (१८)

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३पेक्षमाणा ॥ ८ ॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ ९ ॥ (२०)

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ १० ॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ ११ ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ १२ ॥ (२३)

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ १३ ॥

शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ १४ ॥ (२५)

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ १५ ॥ (२६)

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ १६ ॥ (२६)

सूक्त ५ (पर्याय ४)

ऋषिः—कश्यपः ।। देवता—ब्रह्मगवी ।। छन्दः—२८ आसुरी गायत्री; २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्न्यनुष्टुप्; ३१ याजुषी त्रिष्टुप्; ३२ साम्नी गायत्री; ३३, ३४ साम्नी बृहती; ३५ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ३६ साम्न्युष्णिक् ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।। मन्त्र ११ ।

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ १ ॥ (२८)

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २ ॥ (२९)

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३ ॥ (३०)

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ४ ॥

अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥ ५ ॥ (३२)

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ६ ॥ (३३)

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ७ ॥ (३४)

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ८ ॥ (३५)

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ९ ॥ (३६)

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ १० ॥ (३७)

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥११॥ (२७)

सूक्त ५ (पर्याय ५)

ऋषिः—कश्यपः ।। देवता—ब्रह्मगवी ।। छन्दः—३९ साम्नी पङ्क्तिः; ४० याजुष्यनुष्टुप्; ४१, ४६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ४२ आसुरी बृहती; ४३ साम्नी बृहती; ४४ पिपीलिकामध्यानुष्टुप्; ४५ आर्ची बृहती ।। मन्त्र ८ ।

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ १ ॥ (३९)

अस्वगता परिह्णुता ॥ २ ॥ (४०)

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ३ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४ ॥ (४२)

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ५ ॥ (४३)

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ६ ॥ (४४)

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ७ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ८ ॥ (४६) (२८)

—:०:—

सूक्त ५ (पर्याय ६)

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—(४७, ४९, ५१—५३, ५७—५९,) ६१ प्राजापत्यानुष्टुप्; ४८ आर्च्यनुष्टुप्; ५० साम्नी बृहती; ५४, ५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६ आसुरी गायत्री; ६० गायत्री ॥ मन्त्र १५ ।

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ १ ॥ (४७)

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥ २ ॥ (४८)

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ३ ॥

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥४॥ (५०)

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५ ॥ (५१)

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ६ ॥

वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ७ ॥ (५३)

ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ८ ॥ (५४)

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ९ ॥ (५५)

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ १० ॥ (५६)

आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ११ ॥

अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ १२ ॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ १३ ॥ (५९)

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ १४ ॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ १५ ॥ (६१) (२९)

—:०:—

सूक्त ५ (पर्याय ७)

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—६२—६४, ६६, ६८—७० प्राजापत्यानुष्टुप्; ६५ गायत्री; ६७ प्राजापत्या गायत्री; ७१ आसुरी पङ्क्तिः; ७२ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ७३ आसुर्युष्णिक् ॥ मन्त्र १२।

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ १ ॥ (६२)

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ २ ॥

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ३ ॥ (६४)

एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ४ ॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ५ ॥ (६६)

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६ ॥ (६७)

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ७ ॥ (६८)

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य संवृह ॥ ८ ॥ (६९)

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ९ ॥ (७०)

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ १० ॥ (७१)

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ११ ॥ (७२)

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ १२ ॥ (७३) (३०) [५।१]

इति द्वादशं काण्डम् समाप्तम् ॥

—:०:—

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ त्रयोदशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः; ३ मरुतः; २८—३० अग्निः; ३१ अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ।। छन्दः—१, २, ६, ७, १०, ११, २०, २२—२५, २७, ३३, ३४, ३८, ४१ त्रिष्टुप्; ३—५, ९, १२ जगती; ८ भुरिक् त्रिष्टुप्; १३ अतिशाक्वरगर्भातिजगती; १४ त्रिपदा पुरःपरशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; १५ अतिजागतगर्भा परा जगती; (१६ विराड् बृहती); १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती; १८ पञ्चपदा परशाक्वरा भुरिक् ककुम्मत्यतिजगती; १९ पञ्चपदा परातिजागता ककुम्मत्यतिजगती; २१ आर्षी निचृद् गायत्री; २६ विराट् परोष्णिक्; २८ भुरिगनुष्टुप्; २९, ३०, ३२, ३९, ४०, ४५—५१, ५३, ५४, ५६, ५८ अनुष्टुप्; ३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती; ३५ उपरिष्टाद् बृहती; ३६ निचृन्महाबृहती; ३७ परशाक्वरा विराडतिजगती; ४२ विराड् जगती; ४३ विराण्महाबृहती; ४४ परोष्णिक्; ५२ पथ्या पङ्क्तिः; ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा पथ्या पङ्क्तिः; ५७ ककुम्मत्यनुष्टुप्; ५९, ६० गायत्री ।। मन्त्र ६० ।

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् । यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥ १ ॥

उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः । सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपदु आ वेशयेह ॥ २ ॥

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्। आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥

रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्। ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत्। तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान। तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः। तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन ॥ ७ ॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च। दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८ ॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्। तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः। तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥१०॥ (१)

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः। तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः। मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः । वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः । आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥१५॥

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् । अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा । इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः । इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः । इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा । सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥ (२)

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः । तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति । तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् । घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव । यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ।२६।

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा । इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥ २७ ॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः । अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति । क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् । अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥ (३)

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते । इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि। अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्। घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह। प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्। तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति। तिरः समुद्रमति रोचसेर्णवम् ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति। सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम्। यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि। इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे। समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥ (४)

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी। सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

आरोहन् द्यामृतः प्राव मे वचः। उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥

वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि। यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत। तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान्। वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते। तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ। ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते। ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥ (५)

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः। ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम्। घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत। तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत्। त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत। तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति। तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा। तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति। दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतमशीमहि ॥६०॥ (६)

[१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम्, रोहितः; आदित्यः ॥ छन्दः—४—७, ९, १८, ३१—३३, ३, ५, ३६, ३८, ४२, ४६, त्रिष्टुप्; १, १२—१५, ३९—४१ अनुष्टुप्; २, ३, ८, ४३ जगती, १० आस्तारपङ्क्तिः; ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; १६—२४ आर्षी गायत्री; २५ ककुम्मत्यास्तारपङ्क्तिः; २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिग् जगती; २७ विराड् जगती; २९ बार्हतगर्भानुष्टुप्; ३० पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भाऽतिजगती; ३४ आर्षी पङ्क्तिः; ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती; ४४ चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिग् जगती; ४५ अतिजागतगर्भा जगती ॥ मन्त्र ४६ ।

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते । आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे । स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥ २ ॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया । तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः । स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गां अति याहि शीभम् । दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः । यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् । यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त । अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत्। दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि। उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥ (७)

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अर्णवम्। विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥

दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे। स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव। नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः। अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति। तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे ॥१७॥

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥ (८)

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥२१॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ।२२।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्य[ः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी । स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः । सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ २६ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्ये[ति पश्चात् । द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥ २७ ॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः । केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ।२८।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि । महास्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥ (अथर्व २०।५८।३

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः । उभा समुद्रौ रुच्या व्या[पिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥ (६)

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः । विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥ ३२ ॥

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् । दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ ३४ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५ ॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् । पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥ ३६ ॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् । स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ ३८ ॥ (ऋ० १०।८।१८)

रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः । रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वरराभरत् ॥ ३९ ॥

रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् । रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥ (१०)

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः । दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥

आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः। चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२ ॥

अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः। सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव। विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम्। सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्। यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६॥ (११) [२।१]

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम्, रोहितः; आदित्यः ॥ छन्दः—१, १६, १८, २१ अष्टपदाऽऽकृतिः; २ षट्पदा भुरिगष्टिः; ३ षट्पदाऽष्टिः; ४ षट्पदाऽतिशाक्वरगर्भा धृतिः; ५, ६ सप्तपदा शाक्वरातिशाक्वरगर्भा प्रकृतिः; ७ सप्तपदाऽनुष्टुब्गर्भाऽतिधृतिः; ८, २०, २२ षट्पदाऽत्यष्टिः; ९—१२ सप्तपदा भुरिगतिधृतिः; १३, १४, २३, २५ अष्टपदा विकृतिः, १५ सप्तपदा निचृदतिधृतिः; १७, २४ सप्तपदा कृतिः; १९ अष्टपदा भुरिगाकृतिः २६ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २६ ॥

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते। यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति तस्य देवस्य। क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्य देवस्य। क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ॥ उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २ ॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ॥ उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ३ ॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ॥ उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ४ ॥

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः। यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे ॥ तस्य···मुञ्च पाशान् ॥५॥

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः। यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ॥ तस्य·····मुञ्च पाशान् ॥ ६ ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः। भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ॥ तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ ७ ॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते। तस्य··· मुञ्च पाशान् ॥ ८ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति। त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य। तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ ९ ॥

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु। यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्। तस्य···पाशान् ॥१०॥ (१२)

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्। ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्। तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ ११ ॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची। यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्। स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्। तस्य··· मुञ्च पाशान् ॥ १३ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्। स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा। तस्य·····मुञ्च पाशान् ॥ १४ ॥

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्। यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति। तस्य·····मुञ्च पाशान् ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः। यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति। तस्य···मुञ्च पाशान् ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः। तस्य.....मुञ्च पाशान् ॥ १८ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्। ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा। तस्य... मुञ्च पाशान् ॥ १९ ॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे। तस्य... मुञ्च पाशान् ॥ २० ॥ (१३)

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः। विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म। तस्य...मुञ्च पाशान् ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे। तस्य... मुञ्च पाशान् ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि। किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य...मुञ्च पाशान् ॥ ॥२३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः। तस्य...मुञ्च पाशान् ॥ २४ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्। चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः। तस्य... मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत । स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥ (१४) [३।१]

—:o:—

सूक्त ४ (पर्याय १)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—१—११ प्राजापत्यानुष्टुप् (३—७ रश्मिभिरित्यस्योक्तमेव); १२ विराड् गायत्री; १३ आसुर्युष्णिक् ॥ मन्त्र १३ ।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ३ ॥

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ४ ॥

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः । रश्मिभिर्नभ० ···॥५॥

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । रश्मिभिर्नभ० ···॥६॥

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति । रश्मिभिर्नभ० ···।७।

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥(१५)

—:०:—

सूक्त ४ (पर्याय २)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् । छन्दः—१४ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; १५ आसुरी पङ्क्तिः; १६; १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १७, १८ आसुरी गायत्री; २० विराड् गायत्री; २१ आसुर्युष्णिक् (१६—२१, य एतमित्यस्योक्तमेव) ॥

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥१४॥(१)

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥ (२)

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकु०···।१६।(३)

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकु०···॥१७॥(४)

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं०···वेद ॥ १८ ॥ (५)

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । य एतं०···वेद ।१९। (६)

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । य एतं०··· वेद ॥२०॥ (७)

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२१॥ (१६) (८)

सूक्त ४ (पर्याय ३)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—२२ भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप् (य एतमित्यस्योक्तमेव); २३ आर्ची गायत्री; २४ आसुरी पङ्क्तिः; २५ एकपदाऽऽसुरी गायत्री; २६ आर्ची गायत्री; २७, २८ प्राजापत्यानुष्टुप् ॥

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २२ ॥ (१)

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥ (२)

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥ (३)

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं१ स रक्षः ॥ २५ ॥ [४]

स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥ [५]

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥ [६]

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥ (१७) [७]

—:०:—

सूक्त ४ (पर्याय ४)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—२९, ३३, ३९, ४०, ४५ आसुरी गायत्री; ३०, ३२, ३५, ३६, ४२ प्राजापत्यानुष्टुप्; ३१ विराड् गायत्री; ३४, ३७, ३८ साम्न्युष्णिक्; ४१ साम्नी बृहती; ४३ आर्षी गायत्री; ४४ साम्न्यनुष्टुप् ॥

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥ [१]

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥ [२]

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥ [३]

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥ [४]

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥ [५]

स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥ [६]

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥ [७]

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥ [८]

स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥ [९]

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥ [१०]

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥ [११]

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥ [१२]

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥ [१३]

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥ [१४]

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ।४३। [१५]

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥ [१६]

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥ (१८) [१७]

—:०:—

सूक्त ४ (पर्याय ५)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—४६ आसुरी गायत्री; ४७ यवमध्या गायत्री; ४८ साम्न्युष्णिक्; ४९ निचृत्साम्नी बृहती; ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५१ विराड् गायत्री (५०, ५१ नमस्ते इत्यस्यान्नाद्येनेत्यस्य चोक्तमेव) ।

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥ [१]

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥ [२]

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥ (३)

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥ (४)

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत । अन्नाद्येन०···ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५० ॥ (५)

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते अस्तु० अन्नाद्येन०···ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५१ ॥ (६) (१९)

सूक्त ४ (पर्याय ६)

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अध्यात्मम् ॥ छन्दः—५२, ५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् (नमस्ते इत्यस्यान्नाद्येनेत्यस्य चोक्तमेव); ५४ द्विपदाऽऽर्षी गायत्री; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ निचृत्साम्नी बृहती ॥ मन्त्र ५ ।

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत०...अन्नाद्येन...ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५२ ॥ (१)

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते० अन्नाद्येन... ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५३ ॥ (२)

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥ (३)

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥ (४)

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६॥ (५) (२०) [१।६]

॥ इति त्रयोदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

—:०:—

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ चतुर्दशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—सावित्री सूर्या ॥ देवता—आत्मा; १—५ सोमः; ६—२२ विवाहः; २३ सोमार्कौ; २४ चन्द्रमाः; २५, २७ वधूवासःसंस्पर्शमोचनम्; २६, २८—६४ विवाहमन्त्राशिषः ॥ छन्दः—१—१३, १६—१८, २२, २५—२८, ३०, ३५, ३६, ४१—४४, ५१, ५२, ६२, ६३ अनुष्टुप्; १४ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; १५ आस्तारपङ्क्तिः; १९, २०, २४, ३२; ३३, ३७, ३९, ४०, ४७, ४९, ५०, ५३, ५६—५९, ६१ त्रिष्टुप्; २१, ४६, ६४ जगती; २३ ३१, ४५, ६० परानुष्टुप् (?) त्रिष्टुप्; २९, ५५, पुरस्ताद् बृहती; ३४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्; ४८ पथ्यापङ्क्तिः ५४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६४।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥ (ऋ० १०।८५।१)

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही। अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥ (ऋ० १०।८५।२)

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम्। सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥ (ऋ० १०।८५।३)

यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः। वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥ (ऋ० १०।८५।५)

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः। ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥ (ऋ० १०।८५।४)

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्। द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥ (ऋ० १०।८५।७)

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥ (ऋ० १०।८५।६)

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः। सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥ (ऋ० १०।८५।८)

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥ ९ ॥ (ऋ० १०।८५।९)

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः। शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥ (१) (ऋ० १०।८५।१०)

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम्। श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥ (ऋ० १०।८५।११)

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः। अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥ (ऋ० १०।८५।१२)

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्। मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥ (ऋ० १०।८५।१३)

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः। क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥ (ऋ० १०।८५।१४)

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप। विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥ (ऋ० १०।८५।१५)

द्वे त चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विदुः। अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥ (ऋ० १०।८५।१६)

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥ (ऋ० १०।५९।१२)

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥ (ऋ० १०।८५।२५)

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥ १९ ॥
(ऋ० १०।८५।२४)

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन। गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥ (२)
(ऋ० १०।८५।२६)

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
(ऋ० १०।८५।२७)

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥ (ऋ० १०।८५।४२)

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्। विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ।२३। (ऋ० १०।८५।१८)

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्। भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४॥ (ऋ० १०।८५।१९)

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु। कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥ (ऋ० १०।८५।२९)

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते। एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥ (ऋ० १०।८५।२८)

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया। पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥ (ऋ० १०।८५।३०)

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम्। सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥ (ऋ० १०।८५।३५)

तृष्टमेतत कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे। सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥ (ऋ० १०।८५।३४)

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम्। प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥ (३)

यवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु। ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ। शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥ ३२ ॥

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम्। अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् । सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् । यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा । येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु । अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्या॒वान् ॥ ३७ ॥

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः । अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म । शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥४०॥ (४)

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥ (ऋ० ८।९१।७)

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु। ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः। वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥
(ऋ० १०।४०।१०)

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्। तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु। अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ५० ॥ (५)

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥

त्वष्टा वासो व्य॒दधाच्छुभे कं बृह॒स्पतेः प्र॒शिषा॑ कवी॒नाम् । तेने॒मां नारीं सवि॒ता भग॑श्च सू॒र्यामिव॒ परि॑ धत्तां प्र॒जया॑ ॥ ५३ ॥

इन्द्रा॒ग्नी द्यावा॑पृथि॒वी मा॑त॒रिश्वा॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ भगो॑ अ॒श्विनो॒भा । बृह॒स्पति॑र्म॒रुतो॒ ब्रह्म॒ सोम॑ इ॒मां नारीं प्र॒जया॑ वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

बृह॒स्पतिः॑ प्रथ॒मः सू॒र्याया॑ः शी॒र्षे केशाँ॑ अकल्पयत् । तेने॒माम॑श्विना॒ नारीं॒ पत्ये॒ सं शो॑भयामसि ॥ ५५ ॥

इ॒दं तद्रू॒पं यदव॑स्त॒ योषा॑ जा॒यां जि॑ज्ञा॒से मन॑सा॒ चर॑न्तीम् । तामन्व॑र्तिष्ये॒ सखि॑भि॒र्नव॑ग्वैः॒ क इ॒मान्वि॒द्वान्वि च॑चर्त॒ पाशा॑न् ॥ ५६ ॥

अ॒हं वि ष्या॑मि॒ मयि॒ रू॒पम॑स्या॒ वेद॒दित्प॒श्यन्म॑न॑सः कु॒लाय॑म् । न स्तेय॑मद्मि॒ मन॒सोद॑मुच्ये स्व॒यं श्र॑थ्ना॒नो वरु॑णस्य॒ पाशा॑न् ॥ ५७ ॥

प्र त्वा॑ मुञ्चामि॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॒द्येन॒ त्वाब॑ध्नात्सवि॒ता सु॒शेवा॑ः । उ॒रुं लो॒कं सु॒गमत्र॒ पन्था॑ं कृणोमि॒ तुभ्यं॑ स॒हप॑त्न्यै वधु ॥ ५८ ॥

उद्य॑च्छध्व॒मप॒ रक्षो॑ हनाथे॒मां नारीं॑ सुकृ॒ते द॑धात । धा॒ता वि॑प॒श्चित्पति॑म॒स्यै वि॑वेद॒ भगो॒ राजा॑ पु॒र ए॑तु प्रजा॒नन् ॥ ५९ ॥५ ॥

भग॑स्ततक्ष च॒तुरः॒ पादा॒न्भग॑स्ततक्ष च॒त्वार्युष्प॑लानि । त्वष्टा॑ पिपेश मध्य॒तोऽनु॒ वर्ध्रा॒न्त्सा नो॑ अस्तु सुमङ्ग॒ली ॥ ६० ॥

सु॒किं॒शु॒कं व॑ह॒तुं वि॒श्वरू॑पं॒ हिर॑ण्यवर्णं सु॒वृतं॑ सुच॒क्रम् । आ रो॑ह सूर्ये अ॒मृत॑स्य लो॒कं स्यो॒नं पति॑भ्यो वह॒तुं कृ॑णु॒ त्वम् ॥६१॥ (ऋ० १०।८५।२०)

अभ्रा॑तृघ्नीं॑ वरु॒णाप॑शुघ्नीं बृहस्पते । इन्द्राप॑तिघ्नीं पु॒त्रिणी॒मास्मभ्यं॑ सवितर्वह ॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यं१ स्थूणे देवकृते पथि । शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः । अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

(६) [१।१]

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—सावित्री सूर्या ॥ देवता—आत्मा; १० यक्ष्मनाशिनी; ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी; ३६ देवाः ॥ छन्दः—१—४, ७—११, १६, २१, २२, २३, २७—३०, ४५, ४६, ५३—५८, ६३—६७, ७२, ७३ अनुष्टुप्; ५, ६, १२, ३१, ४० जगती; ६ षट्पदा विराडत्यष्टि; १३, १४, १७—१६, ३६, ३८, ४१, ४२, ४६, ६१, ७०, ७४, ७५ त्रिष्टुप्; १५, ५१ भुरिगनुष्टुप्; २०, पुरस्ताद् बृहती; २४, २५, ३२, ३४ परानुष्टुप्; त्रिष्टुप्; २६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री; ३३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; ३७, ३६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः; ४४ प्रास्तारपङ्क्तिः; ४७ पथ्या बृहती; ४८ सतःपङ्क्तिः; ५० उपरिष्टाद् बृहती निचृत्; ५२ विराट् परोष्णिक्; ५६, ६०, ६२ पथ्या पङ्क्तिः; ६८ पुर उष्णिक्; ६६ षट्पदातिशक्वरी; ७१ बृहती ॥ मन्त्र ७५ ॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥ (ऋ० १०।८५।३८)

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥ (ऋ० १०।८५।३९)

सोम॑स्य जा॒या प्र॑थ॒मं ग॑न्ध॒र्वस्ते॑ऽप॑रः॒ पतिः॑। तृ॒तीयो॑ अ॒ग्निष्टे॒ पति॑स्तु॒रीय॑स्ते मनुष्य॒जाः ॥ ३ ॥ (ऋ० १०।८५।४०)

सोमो॑ ददद् ग॒न्ध॒र्वाय॑ ग॒न्ध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑। र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्मह्य॒मथो॑ इ॒माम् ॥ ४ ॥ (ऋ० १०।८५।४१)

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अरंसत। अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्यां॑ अशीमहि ॥५॥

सा म॑न्दसा॒ना मन॑सा शि॒वेन॑ र॒यिं धे॑हि॒ सर्व॑वीरं वच॒स्य॑म्। सु॒गं ती॒र्थं सु॑प्रपा॒णं शु॑भस्पती स्था॒णुं प॑थिष्ठा॒मप॑ दु॒र्म॑तिं ह॑तम् ॥ ६ ॥ (ऋ० १०।४०।१३)

या ओष॑धयो॒ या न॒द्यो॒३॒ यानि॒ क्षेत्रा॑णि॒ या वना॑। तास्त्वा॑ वधु प्र॒जाव॑तीं॒ पत्ये॑ रक्षन्तु र॒क्षसः॑ ॥ ७ ॥

एमं पन्था॑मरुक्षाम सु॒गं स्व॑स्ति॒वाह॑नम्। यस्मि॑न् वी॒रो न रिष्य॑त्य॒न्येषां॑ वि॒दन्ते॒ वसु॑ ॥ ८ ॥

इ॒दं सु मे॑ नरः शृणुत॒ यया॒शिषा॒ दंप॑ती वा॒मम॑श्नु॒तः। ये ग॑न्ध॒र्वा अ॑प्स॒रस॑श्च दे॒वीरे॒षु वा॑नस्प॒त्येषु॒ येऽधि॑ त॒स्थुः। स्यो॒नास्ते॑ अ॒स्यै व॒ध्वै॑ भ॑वन्तु॒ मा हिं॑सिषुर्वह॒तुमु॒ह्यमा॑नम् ॥ ९ ॥

ये व॒ध्व॑श्च॒न्द्रं व॑ह॒तुं यक्ष्मा॒ यन्ति॒ जनाँ॒ अनु॑। पुन॒स्तान् य॒ज्ञिया॑ दे॒वा नय॑न्तु॒ यत॒ आग॑ताः ॥ १० ॥ (७) (ऋ० १०।८५।३१)

मा वि॑दन् परिप॒न्थिनो॒ य आ॒सीद॑न्ति॒ दंप॑ती। सु॒गेन॑ दु॒र्गमती॑ता॒मप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः ॥ ११ ॥ (ऋ० १०।८५।३२)

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण । पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश । तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् । सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत । मादुष्कृतौ व्ये[नसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥ (ऋ० १०।८५।१३)

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः । वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥ (ऋ० १०।८५।४४)

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः । प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ।१८। (ऋ० १०।८५।४४)

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् । शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् । अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥ (८)

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन। तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते। तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं संपर्यतु ॥ २३ ॥

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा। इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः। सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः। स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः। स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥ (ऋ० १०।८५।३३)

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि। वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम्। आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥ (६)

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः । सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥

उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा । जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च । तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः । विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम् । अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः । मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

तां पूषँ छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति । या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः । प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥ (१०)

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् । यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

यं मे॑ द॒त्तो ब्र॑ह्मभा॒गं व॑धू॒योर्वाधू॑यं॒ वासो॑ व॒ध्वश्च॒ वस्त्र॑म्। यु॒वं ब्र॒ह्मणे॑ऽनु॒-मन्य॑मानौ॒ बृह॑स्पते सा॒कमिन्द्र॑श्च द॒त्तम् ॥ ४२ ॥

स्यो॒नाद्योने॒रधि॒ बुध्य॑मानौ। हसामु॒दौ मह॑सा॒ मोद॑मानौ। सु॒गू सु॑पु॒त्रौ सु॑गृ॒हौ त॑राथो जी॒वावु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥ ४३ ॥

नव॒ं वसा॑नः सुर॒भिः सु॒वासा॑ उ॒दागां॑ जी॒व उ॒षसो॑ विभा॒तीः। आ॒ण्डात् प॑त॒त्रीवा॑मुक्षि॒ विश्व॑स्मा॒देन॑स॒स्परि॑ ॥ ४४ ॥

शुम्भ॑नी॒ द्यावा॑पृथि॒वी अन्ति॑सुम्ने॒ महि॑व्रते। आप॑: स॒प्त सु॑स्रुवुर्दे॒वीस्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ ४५ ॥

सूर्या॑यै दे॒वेभ्यो॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च। ये भू॒तस्य॒ प्रचे॑तस॒स्तेभ्य॑ इ॒दम॑करं॒ नम॑: ॥ ४६ ॥

य ऋ॒ते चि॑दभि॒श्रिष॑: पु॒रा ज॒त्रुभ्य॑ आ॒तृद॑:। संधा॑ता सं॒धिं म॒घवा॑ पुरू॒वसु॒र्निष्क॑र्ता॒ विह्रु॑तं॒ पुन॑: ॥ ४७ ॥

अपा॒स्मत् तम॑ उच्छतु॒ नील॑ं पि॒शङ्ग॑मु॒त लोहि॑तं॒ यत्। नि॒र्द॒हनी या पृ॑षात॒क्य॑१॒स्मिन् तां स्था॒णावध्या स॑जामि ॥ ४८ ॥

याव॑तीः कृ॒त्या उ॑प॒वास॑ने॒ याव॑न्तो॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑:। व्यृ॑द्धयो॒ या अस॑मृद्धयो॒ या अ॒स्मिन् ता स्था॒णावधि॑ सादयामि ॥ ४९ ॥

या मे॑ प्रि॒यत॑मा त॒नूः सा मे॑ बिभाय॒ वास॑सः। तस्याग्रे॒ त्वं वन॑स्पते नी॒विं॑ कृणुष्व॒ मा व॒यं रि॑षाम ॥ ५० ॥ (११)

ये अ॒न्ता याव॑तीः॒ सिचो॒ य ओत॑वो॒ ये च॒ तन्त॑वः। वासो॒ यत् पत्नी॑भिरु॒तं तन्न॑: स्यो॒नमुप॑ स्पृशात् ॥ ५१ ॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः । अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥

बृहस्पतिना०...तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां...॥ ५४ ॥

बृहस्पतिना०...भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां० ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिना०...यशो गोषु प्रविष्टं यत तेनेमां० ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिना०...पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां० ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् । अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् । अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥ (१२)

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् । अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् । अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्य१श्नुताम् ॥ ६४ ॥

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् । तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् । अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः । अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं१ लिखात् ॥ ६८ ॥

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि । तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्व१न्तरिक्षम् । अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् । सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७०॥(१३)

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् । ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥ (ऋ. ७।९६।४)

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् । ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा । तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५॥ (१४)

[२।१]

॥ इति चतुर्दशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ पंचदशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ।। छन्दः—१ साम्नी पङ्क्तिः; २ द्विपदा साम्नी बृहती; ३ एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; ४ एकपदा विराड् गायत्री; ५ साम्न्यनुष्टुप्; ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; ७ आसुरी पङ्क्तिः; ८ त्रिपदाऽनुष्टुप् ।। मन्त्र ८ ।

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥

तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोभवत् ॥ ५ ॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥ [१।१]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१, ६, ६, १५, २१, २६ साम्न्यनुष्टुप्; २, १६, २२ साम्नी त्रिष्टुप्; ३ द्विपदाऽऽर्षी; पङ्क्तः; ४, १८, २४ द्विपदा ब्राह्मी गायत्री; ५, १३, १६, २५ द्विपदाऽऽर्ची जगती; [७ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; ८ आर्ची बृहती]; १० एकपदोष्णिक्; ११ द्विपदाऽऽर्षी भुरिक् त्रिष्टुप्; १२ आर्षी परानुष्टुप्; १४ साम्नी पङ्क्तः; [१४, २० मातरिश्वा इत्यस्य कीर्त्तिश्चेत्यस्य; च सप्तमाष्टमवत्]; १७ द्विपदा विराडार्षी पङ्क्तः; २० आसुरी गायत्री; २३ निचृदार्षी पङ्क्तः; २७ पदपङ्क्तः; २८ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २८ ।

स उद॑तिष्ठ॒त् स प्राचीं॒ दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥ १ ॥

तं बृ॒हच्च॑ रथंत॒रं चा॑दि॒त्याश्च॒ विश्वे॑ च दे॒वा अ॑नु॒व्य॑चलन् ॥ २ ॥

बृ॒हते॑ च॒ वै स र॑थंत॒राय॑ चादि॒त्येभ्य॑श्च॒ विश्वे॑भ्यश्च दे॒वेभ्य॒ आ वृ॑श्चते॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॒ व्रात्य॑मुप॒वद॑ति ॥ ३ ॥

बृ॒हतश्च॒ वै स र॑थंत॒रस्य॑ चादि॒त्यानां॑ च॒ विश्वे॑षां च दे॒वानां॑ प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ तस्य॒ प्राच्यां॑ दि॒शि ॥ ४ ॥

श्र॒द्धा पुं॑श्च॒ली मि॒त्रो मा॑ग॒धो वि॒ज्ञानं॒ वासोऽह॑रु॒ष्णीषं॒ रात्री॒ केशा॒ हरि॑तौ प्रव॒र्तौ क॑ल्म॒लिर्म॒णिः ॥ ५ ॥

भू॒तं च॑ भवि॒ष्यच्च॑ परिष्क॒न्दौ मनो॑ विप॒थम् ॥ ६ ॥

मा॒तरिश्वा॑ च॒ पव॑मानश्च विपथवा॒हौ वा॒तः सार॑थी रे॒ष्मा प्र॑तो॒दः ॥७॥

की॒र्तिश्च॒ यश॑श्च पुरःस॒रावैनं॑ की॒र्तिर्ग॑च्छ॒त्या यशो॑ गच्छति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ८ ॥ (१)

स उद॑तिष्ठ॒त स दक्षि॑णां॒ दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥ ९ ॥

तं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॑ च वामदे॒व्यं च॑ य॒ज्ञश्च॒ यज॑मानश्च प॒शव॑श्चानु॒-
व्य॑चलन् ॥ १० ॥

य॒ज्ञाय॒ज्ञिया॑य च॒ वै स वा॑मदे॒व्याय॑ च य॒ज्ञाय॑ च॒ यज॑मानाय च
प॒शुभ्य॒श्चा वृ॑श्चते॒ य ए॒वं वि॒द्वांसं॒ व्रात्य॑मुप॒वद॑ति ॥ ११ ॥

य॒ज्ञाय॒ज्ञिय॑स्य च॒ वै स वा॑मदे॒व्यस्य॑ च य॒ज्ञस्य॑ च॒ यज॑मानस्य च
पशूनां च॑ प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ तस्य॒ दक्षिणायां दि॒शि ॥ १२ ॥

उ॒षाः पुं॑श्च॒ली मन्त्रो॑ माग॒धो वि॒ज्ञानं॒ वासोऽह॑रु॒ष्णीषं॒ रात्री॒ केशा॒
हरि॑तौ प्रव॒र्तौ क॑ल्म॒लिर्म॒णिः ॥ १३ ॥

अ॒मा॒वा॒स्या॑ च पौर्णमासी च॑ परिष्क॒न्दौ मनो०···वेद॑ ॥१४॥ (२)

स उद॑तिष्ठ॒त् स प्र॒तीचीं॑ दि॒शमनु॒ व्य॑चलत् ॥ १५ ॥

तं वै॑रू॒पं च॑ वैरा॒जं चाप॑श्च॒ वरु॑णश्च॒ राजा॑नु॒व्य॑चलन् ॥ १६ ॥

वै॒रू॒पाय॑ च॒ वै स वैरा॒जाय॑ चा॒द्भ्यश्च॒ वरु॑णाय च॒ राज्ञ॒ आ वृ॑श्चते॒ य
ए॒वं वि॒द्वांसं॒ व्रात्य॑मुप॒वद॑ति ॥ १७ ॥

वै॒रू॒पस्य॑ च॒ वै स वैरा॒जस्य॑ चा॒पां च॒ वरु॑णस्य च॒ राज्ञः॑ प्रि॒यं धाम॑
भवति॒ तस्य॑ प्र॒तीच्यां॑ दि॒शि ॥ १८ ॥

इ॒रा पुं॑श्च॒ली हसो॑ माग॒धो वि॒ज्ञानं॒०···क॑ल्म॒लिर्म॒णिः ॥ १९ ॥

अह॑श्च॒ रात्री॑ च परिष्क॒न्दौ मनो॑ विप॒थम् ।०···य ए॒वं वेद॑ ॥२०॥ (३)

स उद॑तिष्ठ॒त् स उदी॑ची॒ं दि॒शमनु व्य॑चलत् ॥ २१ ॥

तं श्यै॒तं च॑ नौध॒सं च॑ सप्त॒र्षय॑श्च॒ सोम॑श्च॒ राजा॑नु॒व्य॑चलन् ॥ २२ ॥

श्यैतायं च वै स नौधसायं च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ २३ ॥

श्यैतस्यं च वै स नौधसस्यं च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥

विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥

श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ।२७।

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥ (४) [१।२]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्या गायत्री; २ साम्न्युष्णिक्; ३ याजुषी जगती; ४ द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक्; ५ आर्ची बृहती; ६ आसुर्यनुष्टुप्; ७ साम्नी गायत्री; ८ आसुरी पङ्क्तिः; ९ आसुरी जगती; १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ११ विराड् गायत्री ॥ मन्त्र १० ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ।१।

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥

बृहच्चं रथन्तरं चानूच्येऽ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७॥ सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥८॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥ तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्याऽ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥ [१।३]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१, १३, १६ दैवी जगती; २, ८ आर्च्यनुष्टुप्; ३, १२ द्विपदा प्राजापत्या जगती; ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री; ५ प्राजापत्या पङ्क्तिः; ६ आर्ची जगती; ९ आर्ची त्रिष्टुप्; ११ साम्नी त्रिष्टुप्; १४ प्राजापत्या बृहती; १५, १८ द्विपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; १७ आर्च्युष्णिक् ॥ मन्त्र १८ ।

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ।५।

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥ (२)

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥ (३)

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥ (४)

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥ (५)

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥ (६) [१४]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ५

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—रुद्रः ॥ छन्दः—१ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा भुरिगार्ची त्रिष्टुप्; ३, १६ द्विपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४ त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या

पङ्क्तिः; ५, ७, ९, ११, १३ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; (नास्य इत्यस्योक्तम्) ६, ८, १२ त्रिपदा ककुप्; (१०, १४ आर्षी गायत्री;) १५ विराड् (बृहती)॥ मंत्र १६।

तस्मै॑ प्राच्या॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद् भ॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १ ॥

भ॒व ए॑नमिष्वा॒सः प्राच्या॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नुष्ठा॒तानु॑ तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो नेशा॑नः ॥ २ ॥

नास्य॑ प॒शून् न स॑मा॒नान् हिं॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥ (१)

तस्मै॑ दक्षिणाया दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाच्छ॒र्वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ ४ ॥

श॒र्व ए॑नमिष्वा॒सो दक्षिणाया दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु०···वेद॑ ॥ ५ ॥ (२)

तस्मै॑ प्र॒तीच्या॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शात् प॑शु॒पति॑मिष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ।६।

प॒शु॒पति॑रेनमिष्वा॒सः प्र॒तीच्या॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु···वेद॑ ।।७।। (३)

तस्मा॑ उदीच्या दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शादु॒ग्रं दे॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ।८।

उ॒ग्र ए॑नं दे॒व इ॑ष्वा॒स उदीच्या दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु···वेद॑ ।।९।। (४)

तस्मै॑ ध्रु॒वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद् रु॒द्रमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ।।१०।।

रु॒द्र ए॑नमिष्वा॒सो ध्रु॒वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु···वेद॑ ॥ ११ ॥ (५)

तस्मा॑ ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शान्म॑हादे॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् १२

म॒हा॒दे॒व ए॑नमिष्वा॒स ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु···वेद॑ ।१३। (६)

तस्मै॑ सर्वे॑भ्यो अ॒न्तर्दे॒शेभ्य॒ ईशा॑नमिष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १४ ॥

ईशा॑न एनमिष्वा॒सः सर्वे॑भ्यो अ॒न्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽनुष्ठा॒तानु॑ तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो नेशा॑नः ॥ १५ ॥

नास्य॑ प॒शून् न स॑मा॒नान् हिं॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ।।१६।। (७) [१।५]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ६

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ।। छन्दः—१, ४ आसुरी पङ्क्तिः; २, १७ आर्ची पङ्क्तिः; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ५, ११ साम्नी त्रिष्टुप्; ६, १२ निचृद् बृहती; ७, १०, १३, १६, २४ आसुरी बृहती; ८ साम्नी पङ्क्तिः; ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; १४, २३ आर्ची त्रिष्टुप्; १५, १८ विराड् जगती; १९ आर्च्युष्णिक्; २० साम्न्यनुष्टुप्; २१ आर्ची बृहती; २२ परोष्णिक्; २५ आर्च्यनुष्टुप्; २६ विराड् बृहती ।। मन्त्र २६ ।

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥ ५ ॥

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (२)

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (३)

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १० ॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं
धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (४)
स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च
पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १४ ॥
आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५॥ (५)
सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे
चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां
चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।१८। (६)
सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं
वेद ॥ २१ ॥ (७)
स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च
देवताः ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥ (८)

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥ (९) [१।६]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ त्रिपदा निचृद् गायत्री; २ एकपदा विराड् बृहती; ३ विराडुष्णिक्; ४ एकपदा गायत्री; ५ पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ५ ।

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ॥ १ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥३॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥ [१।७]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ साम्न्युष्णिक्; २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ३ ।

सो॑ऽरज्यत॒ ततो॑ राज॒न्यो॑ऽजायत ॥ १ ॥

स विश॒ः सब॑न्धूनन्न॑म॒न्नाद्य॑म॒भ्युद॑तिष्ठत् ॥ २ ॥

वि॒शां च॒ वै स सब॑न्धूना॒ं चान्न॑स्य चा॒न्नाद्य॑स्य च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥ [२।१]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) ९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः ॥ छन्दः—१ आसुरी जगती, आर्ची गायत्री; ३ आर्ची पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ३ ।

स विशोऽनु॒ व्य॑चलत् ॥ १ ॥

तं स॒भा च॒ समि॑तिश्च॒ सेना॑ च॒ सुरा॑ चानु॒व्य॑चलन् ॥ २ ॥

स॒भाया॑श्च॒ वै स समि॑तेश्च॒ सेना॑याश्च॒ सुरा॑याश्च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥ [२।२]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ द्विपदा साम्नी बृहती; २ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; ३ द्विपदा प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री; ५ त्रिपदा साम्नी बृहती; ६, ८, १० द्विपदाऽऽसुरी गायत्री; ७, ९ साम्न्युष्णिक्; ११ आसुरी बृहती ॥ मन्त्र ११ ।

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्यो॒ राज्ञोऽति॑थिर्गृ॒हाना॒गच्छे॑त् ॥ १ ॥

श्रेयां॑समेनम॒ात्मनो॑ मानये॑त् तथा॑ क्ष॒त्राय॒ ना वृ॑श्चते॒ तथा॑ रा॒ष्ट्राय॒ ना वृ॑श्चते ॥ २ ॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥

ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥

ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥ [२।३]

—:०:—

सूक्त ११

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता —अध्यात्मम् व्रात्यः ॥ छन्दः— १ देवी पङ्क्तिः; २ द्विपदा पूर्वात्रिष्टुपतिशक्वरी; ३ – ६, ८ निचृदार्ची बृहती; ७,—९ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; १० भुरिगार्ची बृहती, ११ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप ॥ मन्त्र ११ ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥

यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ।३।

यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥

यदे॑नमाह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते प्रि॒यं तथा॑स्त्विति॑ प्रि॒यमे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ।६।
ऐनं॑ प्रि॒यं ग॑च्छति प्रि॒यः प्रि॒यस्य॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥७ ॥
यदे॑नमाह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते॒ वश॒स्तथा॑स्त्विति॒ वश॑मे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥८॥
ऐन॒ं वशो॑ गच्छति व॒शी व॒शिनां॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ९ ॥
यदे॑नमाह॒ व्रात्य॒ यथा॑ ते निका॒मस्तथा॑स्त्विति॑ निका॒ममे॒व तेनाव॑ रुन्द्धे ॥ १० ॥ ऐनं॑ निका॒मो ग॑च्छति निका॒मे निका॒मस्य॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ११ ॥ [२।४]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १२

ऋषि:—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ त्रिपदा गायत्री; २ प्राजापत्या बृहती; ३, ४ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५, ६, ९, १० आसुरी गायत्री; ८ विराड् गायत्री; ७, ११ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ११ ।

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् व्रात्य॒ उद्धृ॑तेष्व॒ग्निष्वधि॑श्रितेऽग्निहो॒त्रेऽति॑थिर्गृ॒हाना॒गच्छे॑त् ॥१॥ स्व॒यमे॑नमभ्यु॒देत्य॑ ब्रूया॒द् व्रात्याति॑ सृज हो॒ष्यामीति॑ ।२।
स चा॑तिसृ॒जेज्जु॑हु॒यान्न चा॑तिसृ॒जेन्न जु॑हुयात् ॥ ३ ॥
स य ए॒व वि॒दुषा॒ व्रात्ये॒नाति॑सृष्टो जु॒होति॑ ॥ ४ ॥ प्र पि॑तृ॒याणं॒ पन्थां॑ जानाति॒ प्र दे॑व॒यान॑म् ॥५॥ न दे॒वेष्वा वृ॑श्चते हु॒तम॑स्य भवति ॥६॥
पर्य॑स्या॒स्मिँल्लो॒क आ॒यत॑नं शिष्यते॒ य ए॒वं वि॒दुषा॒ व्रात्ये॒नाति॑सृष्टो जु॒होति॑ ॥ ७ ॥
अथ य ए॒वं वि॒दुषा॒ व्रात्ये॒नान॑तिसृष्टो जु॒होति॑ ॥ ८ ॥ न पि॑तृ॒याणं॒ पन्थां॑ जानाति॒ न दे॑व॒यान॑म् ॥ ९ ॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ।१०। नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥ [२।५]

—:०:—

सूक्त १३

ऋषि:—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य: ॥ छन्द:—१ साम्न्युष्णिक्; २, ६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३, ५, ७ आसुरी गायत्री; ४, ८ साम्नी बृहती; ९ द्विपदा निचृद् गायत्री; १० द्विपदा विराड् गायत्री; ११ प्राजापत्या पङ्क्तिः; १२ आसुरी जगती; १३ सत:पङ्क्तिः; १४ अक्षरपंक्तिः ॥ मन्त्र १४ ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥

ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ २ ॥ (१)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥

येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥ (२)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५ ॥

ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥ (३)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥

ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥ (४)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥

य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥ (५)

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ।११। (६)

कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥ (७)

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥ (८)

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१४॥ (९) [२।६]

—:०:—

सूक्त १४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१ त्रिपदाऽनुष्टुप्; २, ४, ६, ८, १०, २०, २२, २४, आसुरी गायत्री; ३, ६ पुरउष्णिक्; ५ अनुष्टुप्; ७ प्रस्तारपङ्क्तिः; ११ स्वराड् गायत्री; १२, १४, १६, १८ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १३, १५ आर्ची पङ्क्तिः; (१७, २३ आर्ची त्रिष्टुप्;) १६ भुरिङ्नाम्नी गायत्री; २१ प्राजापत्या त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २४।

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥ मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥ (१)

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥ बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (२)

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कत्वा ॥५॥ अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (३)

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥

आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८॥ (४)

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥ विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥ (५)

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्य᳚चलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ।११। ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (६)

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्य᳚चलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा । १३ । स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४॥ (७)

स यन्मनुष्याइननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्य᳚चलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ।१५। स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद॥ १६ ॥ (८)

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्य᳚चलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ।१७। वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८ (९)

स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्य᳚चलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९॥ मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥ (१०)

स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्य᳚चलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१॥ प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥ (११)

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत परमेष्ठी भूत्वानुव्य᳚चलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ।२३। ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४॥ (१२) [२।७]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १५

ऋषिः—अथर्वा ।। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ।। छन्दः—१ दैवी पङ्क्तिः; २ आसुरी बृहती; ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४, ७, ८ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५, ६ द्विपदा साम्नी बृहती; ९ बिराड् गायत्री; (३—९ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्) ।। मन्त्र ९ ।

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प्रथ॒मः प्रा॒ण ऊ॒र्ध्वो नामा॒यं सो अ॒ग्निः ॥३॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य द्वि॒तीयः॑ प्रा॒णः प्रौ॒ढो नामा॒सौ स आ॑दि॒त्यः ॥ ४ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य तृ॒तीयः॑ प्रा॒णो॒३॑भ्यू॒ढो नामा॒सौ स च॒न्द्रमाः॑ ।५। तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य च॒तुर्थः॑ प्रा॒णो वि॒भूर्नामा॒यं स पव॑मानः ॥ ६ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प॒ञ्च॒मः प्रा॒णो योनि॒र्नाम॒ ता इ॒मा आपः॑ ।७।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठः प्रा॒णः प्रि॒यो नाम॒ त इ॒मे प॒शवः॑ ॥८॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य स॒प्त॒मः प्रा॒णोऽप॑रिमि॒तो नाम॒ ता इ॒माः प्र॒जाः ॥ ९ ॥ [२।८]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः ॥ छन्दः—१, ३ साम्न्युष्णिक्; २, ४, ५ प्राजापत्योष्णिक्; ६ याजुषी त्रिष्टुप्; ७ आसुरी गायत्री; (१—७ तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम्) ॥ मन्त्र ७ ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प्रथ॒मो॑ऽपा॒नः सा पौ॒र्णमा॒सी ॥ १ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य द्वि॒तीयो॑ऽपा॒नः साष्ट॒का ॥ २ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य तृ॒तीयो॑ऽपा॒नः सामा॑वा॒स्या॑ ॥ ३ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य च॒तुर्थो॑ऽपा॒नः सा श्र॒द्धा ॥ ४ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प॒ञ्च॒मो॑ऽपा॒नः सा दी॒क्षा ॥ ५ ॥

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठो॑ऽपा॒नः स य॒ज्ञः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ।७। (२।९)

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १७

ऋषिः—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः ॥ छन्दः—१, ५ प्राजापत्योष्णिक्; २, ७ आसुर्यनुष्टुप्; ३ याजुषी पङ्क्तिः; ४ साम्न्युष्णिक् ६ याजुषी त्रिष्टुप्; ८ प्रतिष्ठाऽऽर्ची पङ्क्तिः; ९ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; १० साम्न्यनुष्टुप्; (१—१० तस्य व्रात्यस्येत्यस्योक्तम) ॥ मन्त्र १० ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥ १० ॥ [२।१०]

—:०:—

सूक्त (पर्याय) १८

ऋषि: अथर्वा ।। देवता —अध्यात्मम्, व्रात्यः ।। छन्दः—१ दैवी पङ्क्तिः; २, ३ आर्ची बृहती; ४ आर्च्यनुष्टुप्; ५ साम्न्युष्णिक् ।। मन्त्र ५ ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य ॥ १ ॥

यद॑स्य॒ दक्षि॑ण॒मक्ष्य॒सौ स आ॑दि॒त्यो यद॑स्य स॒व्यमक्ष्य॒सौ स च॒न्द्रमाः॑ ॥ २ ॥

यो॑ऽस्य॒ दक्षि॑णः॒ कर्णो॒ऽयं सो अ॒ग्निर्यो॑ऽस्य स॒व्यः कर्णो॒ऽयं स पव॑मानः ॥ ३ ॥

अ॒हो॒रा॒त्रे नासि॑के॒ दिति॒श्चादि॑तिश्च शीर्षक॒पाले सं॑वत्स॒रः शिरः॑ ॥ ४ ॥

अह्ना॑ प्र॒त्यङ् व्रात्यो॒ रात्र्या॒ प्राङ् नमो॒ व्रात्या॑य ॥ ५ ॥ [२।११]

॥ पंचदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ षोडशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः- अथर्वा ।। देवता — प्रजापतिः ।। छन्दः — १, ३ द्विपदा साम्नी बृहती; २, १० याजुषी त्रिष्टुप्; ४ आसुरी गायत्री; ५, ८ द्विपदा साम्नी पङ्क्तिः; ६ साम्न्यनुष्टुप्; ७ निचृद् (द्विपदा) विराड् गायत्री; ९ आसुरी पङ्क्तिः; ११ साम्न्युष्णिक्; १२, १३ (द्विपदा) आर्च्यनुष्टुप् ।। मन्त्र १३ ।

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥

योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥

यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ।१३[१।१]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—वाक् ॥ छन्दः—१ आसुर्यनुष्टुप्; २ आसुर्युष्णिक्; ३ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदा साम्नी बृहती; ५ आर्च्यनुष्टुप्; ६ निचृद (द्विपदा) विराड गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥ [१।२]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ब्रह्मादित्यौ ॥ छन्दः—१ आसुरी गायत्री; २, ३ आर्च्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्न्युष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६॥ [१।३]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—ब्रह्मादित्यौ ॥ छन्दः—१, ३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप्; ॥ मंत्र ७ ।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥ [१।४]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त ५

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१, ४—६ (प्र०) विराड् गायत्री; २, ४—७ (द्वि०), ९ प्राजापत्या गायत्री; ३, ४—७ (तृ०), १० द्विपदा साम्नी बृहती; ७ (प्र०) भुरिग् विराड् गायत्री; ८ स्वराड् विराड् गायत्री ।मंत्र १०।

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॑ ग्राह्याः॑ पु॒त्रो᳖ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ॥ १ ॥

अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥ २ ॥

तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न दु॒ष्वप्न्या॑त् पाहि ।३। (१)

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॒ निर्ऋ॑त्याः पु॒त्रो᳖ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः । अन्त॑कोऽसि० दुःष्वप्न्या॑त् पाहि ॥ ४ ॥ (२)

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्र॒मभू॑त्याः पु॒त्रो᳖ऽसि···पाहि ॥ ५ ॥ (३)

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॒ निर्भू॑त्याः पु॒त्रो᳖ऽसि···पाहि ॥ ६ ॥ (४)

वि॒द्म ते॑ स्वप्न ज॒नित्रं॒ परा॑भूत्याः पु॒त्रो᳖ऽसि···पाहि ॥ ७ ॥ (५)

वि॒द्म ते॑ स्वप्नज॒नित्रं॑ देव॒जामी॒नां॑ पु॒त्रो᳖ऽसि य॒मस्य॒ कर॑णः ॥ ८ ॥

अन्त॑कोऽसि मृ॒त्युर॑सि ॥ ९ ॥ तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स नः॑ स्वप्न दुः॒ष्वप्न्या॑त् पाहि ॥ १० ॥ (६) [२।१]

—:o:—

[पर्याय] सूक्त ६

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम्, उषा ॥ छन्दः—१–४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५ साम्नी पङ्क्तिः; ६ निचृदार्ची बृहती; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ आसुरी जगती; ९ आसुरी बृहती; १० आर्च्युष्णिक्; ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्च्यनुष्टुप् वा ॥ मन्त्र ११ ।

अजै॑ष्मा॒द्यास॑नामा॒द्याभू॒माना॑गसो व॒यम् ॥ १ ॥

उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ।६।

तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥ ७ ॥

कुम्भीकाः दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥

जाग्रद्दुःष्वप्न्यं स्वप्नेदुःष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११॥

[२।२]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त ७

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आर्च्युष्णिक्; ६, ९, ११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजापत्या बृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १३ ।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि । पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥

यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥ [२।२]

—:०:—

[पर्याय] सूक्त ८

ऋषिः—यमः ॥ देवता —दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१, ५— २९ (प्र०) ३० एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; २, ५— २९ (द्वि०), ३१ त्रिपदा निचृद् गायत्री; ३ प्राजापत्या गायत्री; ४, ५—२९ (च०), ३३ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५—७, १२, २०, २२, २७ (सर्वेषां तृ) आसुरी जगती; ८, १०, ११, १३, १४, १६, २१ (सर्वेषां तृ०) आसुरी त्रिष्टुप्; ९, १५, १७—१९, २३— ६ (सर्वेषां तृ०), ३२ आसुरी पङ्क्तिः; २८, २९ (द्वयोः तृ०) आसुरी बृहती ॥ मन्त्र ३३ ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ (१)

जितम्...स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि० ॥ ५ ॥ (२)
जितम्...सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि० ॥ ६ ॥ (३)
जितम्...स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि० ॥ ७ ॥ (४)
जितम्...स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि० ॥ ८ ॥ (५)
जितम्...स देवजामीनां पाशान्मा मोचि० ॥ ९ ॥ (६)
जितम्...स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि० ॥ १० ॥ (७)
जितम्...स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि० ॥ ११ ॥ (८)
जितम्...स ऋषीणां पाशान्मा मोचि० ॥ १२ ॥ (९)
जितम्...स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि० ॥ १३ ॥ (१०)
जितम्...सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि० ॥ १४ ॥ (११)
जितम्...स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि० ॥ १५ ॥ (१२)
जितम्...सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि० ॥ १६ ॥ (१३)
जितम्...स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि० ॥ १७ ॥ (१४)
जितम्...स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि० ॥ १८ ॥ (१५)
जितम्...स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि० ॥ १९ ॥ (१६)
जितम्...स ऋतूनां पाशान्मा मोचि० ॥ २० ॥ (१७)
जितम्...स आर्तवानां पाशान्मा मोचि० ॥ २१ ॥ (१८)
जितम्...स मासानां पाशान्मा मोचि० ॥ २२ ॥ (१९)
जितम्...सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि० ॥ २३ ॥ (२०)
जितम्...सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि० ॥ २४ ॥ (२१)

जितम्...सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा म चि० ॥ २५ ॥ (२२)

जितम्...स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि० ॥ २६ ॥ (२३)

जितम्...स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि० ॥ २७ ॥ २४)

जितम्...स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि० ॥ २८ ॥ २५)

जितम्...स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि० ॥ २९ ॥ २६)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ ३० ॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥

स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि० ॥ ३२ ॥ तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३३ (२७) [४।२]

—:०:—

पर्याय सूक्त ९

ऋषिः—यमः ॥ देवता —१ प्रजापतिः; २ मन्त्रोक्ताः; ३, ४ सूर्यः ॥ छन्दः—१ आर्च्यनुष्टुप्; २ आर्च्युष्णिक्; ३ साम्नी पङ्क्तिः; ४ परोष्णिक् ॥ मन्त्र ४

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥ [२।५]

॥ षोडशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ सप्तदशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषि: ब्रह्मा ॥ देवता - आदित्यः ॥ छन्दः—१, २७, ३० जगती; २—५ अतिजगती; ६, ७, १९ अत्यष्टिः; ८, ११, १६, अतिधृतिः; ९, १४, १५ पञ्चपदा शक्वरी; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १८ भुरिगष्टिः २० ककुप् (?); २१ चतुष्पदोपरिष्टाद् बृहती; २२, २५, २६ अनुष्टुप्; २३ निचृद् बृहती; २४ बिराडत्यष्टिः; २८, २९ त्रिष्टुप्; (१—५ षट्पदाः ११—१३, १६, १८, १९, २४ सप्तपदा) । मंत्र ३० ।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥

विषासहिं०...ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥

विषासहिं०...ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

विषासहिं०...ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥

विषासहिं०...ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि । द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

उदि॒ह्युदि॑हि सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्युदि॑हि । यांश्च॒ पश्या॑मि॒ यांश्च॒ न तेषु॑ मा सुम॒तिं कृ॑धि॒ तवेद् विष्णो बहु॒धा वी॒र्या॑णि । त्वं नः० ··· ॥ ७ ॥

मा त्वा॑ दभन्त्सलि॒ले अ॒प्स्वं॑१न्तर्ये॑ पा॒शिन॑ उप॒तिष्ठ॒न्त्यत्र॑ । हि॒त्वा-श॑स्तिं॒ दिव॒मारु॑क्ष ए॒तां स नो॑ मृड सुम॒तौ ते॑ स्याम॒ तवेद् ... ॥ ८ ॥

त्वं न॑ इन्द्र मह॒ते सौभ॑गा॒यादब्धेभि॒ः परि॑ पाह्य॒क्तुभि॒स्तवेद्० ··· ॥९॥

त्वं न॑ इन्द्रो॒तिभि॑ः शि॒वाभि॒ः शंत॑मो भव । आ॒रोह॑स्त्रि॒दि॒वं दि॒वो गृ॑णा॒नः सोम॑पीतये प्रि॒यधा॑मा स्व॒स्तये॒ तवेद्० ··· ॥ १० ॥ (१)

त्वमि॑न्द्रासि विश्व॒जित् स॑र्व॒वित् पु॑रुहू॒तस्त्वमि॑न्द्र । त्वमि॑न्द्रे॒मं सु॒हवं॒ स्तोम॒मेर॑यस्व॒ स नो॑ मृड सुम॒तौ ते॑ स्याम॒ तवेद्० ··· ॥ ११ ॥

अद॑ब्धो दि॒वि पृ॑थि॒व्यामु॒तासि॒ न त॑ आपुर्महि॒मान॑म॒न्तरि॑क्षे । अद॑ब्धेन॒ ब्रह्म॑णा वावृधा॒नः स त्वं न॑ इन्द्र दि॒वि षं॑छर्म॑ यच्छ॒ तवेद्० ··· ॥१२॥

या त॑ इन्द्र त॒नूर॒प्सु या पृ॑थि॒व्यां यान्तर॒ग्नौ या त॑ इन्द्र॒ पव॑माने स्व॒र्वि॑दि । ययेन्द्र त॒न्वा॒३॒॑न्तरि॑क्षं व्या॒पि॒थ तया॑ न इन्द्र त॒न्वा॒३॒ शर्म॑ यच्छ॒ तवेद् विष्णो बहु॒धा वी॒र्या॑णि । त्वं नः॑ पृणीहि०व्यो॑मन् ।१३।

त्वामि॑न्द्र॒ ब्रह्म॑णा व॒र्धय॑न्तः स॒त्रं नि षे॑दु॒र्ऋष॑यो॒ नाध॑माना॒स्तवेद्० ··· १४

त्वं त॒तं त्वं पर्ये॑ष्युत्सं॑ स॒हस्र॑धारं वि॒दथं॑ स्व॒र्विदं॒ तवेद्० ··· ॥ १५ ॥

त्वं र॑क्षसे प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒स्त्वं शो॒चिषा॒ नभ॑सी॒ वि भा॑सि । त्वमि॒मा विश्वा॒ भुव॒नानु॑ तिष्ठस ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑षि वि॒द्वांस्तवेद्० ··· ॥१६॥

प॒ञ्चभि॒ः परा॒ङ् तप॒स्येक॑या॒र्वाङश॑स्तिमेषि सु॒दिने॒ बाध॑मान॒स्तवेद्० ।१७।

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि। त्वं नः०॥१८॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि। त्वं नः० ॥१९॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥ (२)

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२ ॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह। सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं। तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याऽणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योऽमन् ॥ २४ ॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये। अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥ २५ ॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये। रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥ २६ ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ २७ ॥
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च। मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८ ॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्। मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥ २९ ॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥
(३) [१।१]

॥ सप्तदशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ओ३म्

अथर्ववेद-संहिता

अथाष्टादशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० रुद्रः; ४१—४३ सरस्वती; ४४—४६, ५१, ५२ पितरः ॥ छन्दः—१—७, ९—१३, १६, १७, २४—३६, ३९—४८, ५१—५५, ५८, ६० त्रिष्टुप्; ८, १५ आर्षी पङ्क्तिः; १४, ४९, ५० भुरिक् त्रिष्टुप्; १८—२३ जगती; ३७, ३८ परोष्णिक्; ५६, ५७, ६१ अनुष्टुप्; ५९ पुरोबृहती ॥ मन्त्र ६१ ॥

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् । पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति । महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य । नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम । गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः । नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्। आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्। बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७ ॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय। जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति। अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ९ ॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्। दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥ १० ॥ (१)

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ११ ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्। काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥ १२ ॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम्। अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥

न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम। अ॒न्या किल॒ त्वां कु॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॑ ष्वजातै॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ॥ १५ ॥

अ॒न्यमू॒ षु य॑म्य॒न्य उ॒ त्वां परि॑ ष्वजातै॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम्। तस्य॑ वा॒ त्वं मन॑ इ॒च्छा स वा॒ तवाधा॑ कृणुष्व सं॒विदं॒ सुभ॑द्राम् ॥ १६ ॥

त्रीणि॒ च्छन्दां॑सि क॒वयो॒ वि ये॑तिरे पु॒रु॒रूपं॑ द॒र्श॒तं वि॒श्वच॑क्षणम्। आपो॒ वाता॒ ओष॑धय॒स्तान्येक॑स्मि॒न् भुव॑न॒ आर्पि॑तानि ॥ १७ ॥

वृषा॒ वृष्णे॑ दुदुहे॒ दोह॑सा दि॒वः पयां॑सि य॒ह्वो अदि॑ते॒रदा॑भ्यः। विश्वं॒ स वे॑द॒ वरु॑णो॒ यथा॑ धि॒या स य॒ज्ञियो॑ यजति य॒ज्ञियाँ॑ ऋ॒तून् ॥१८॥

रप॑द्॒ गन्ध॒र्वीरप्या॑ च॒ योष॑णा न॒दस्य॑ ना॒दे परि॑ पातु नो॒ मनः॑। इ॒ष्टस्य॒ मध्ये॒ अदि॑ति॒र्नि धा॑तु नो॒ भ्राता॑ नो ज्ये॒ष्ठः प्र॑थ॒मो वि वो॑चति ॥ १९ ॥

सो चि॒न्नु भ॒द्रा क्षु॒मती॒ यश॑स्वत्यु॒षा उ॑वास॒ मन॑वे॒ स्व॑र्वती। यदी॑मु॒शन्त॑मुश॒तामनु॒ क्रतु॑म॒ग्निं होता॑रं वि॒दथा॑य॒ जीज॑नन् ॥ २० ॥ (२)

अध॒ त्यं द्र॒प्सं वि॒भ्वं॑ विचक्ष॒णं विराभ॑रदिषि॒रः श्ये॒नो अ॑ध्व॒रे। यदी॒ विशो॑ वृ॒णते॑ द॒स्ममार्या॑ अ॒ग्निं होता॑र॒मध॒ धीर॑जायत ॥ २१ ॥

सदा॑सि र॒ण्वो यव॑सेव॒ पुष्य॑ते॒ होत्रा॑भिरग्ने॒ मनु॑षः स्वध्व॒रः। विप्र॑स्य वा॒ यच्छ॑शमा॒न उ॒क्थ्यो॒३॒ वाजं॑ सस॒वाँ उ॑प॒यासि॒ भूरि॑भिः ॥ २२ ॥

उदी॑रय पि॒तरा॑ जा॒र आ भग॒मिय॑क्षति हर्य॒तो हृ॒त्त इ॑ष्यति। विव॑क्ति॒ वह्निः॑ स्वप॒स्यते॑ म॒खस्त॑वि॒ष्यते॒ असु॑रो॒ वेप॑ते म॒ती ॥ २३ ॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे। इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥ २४ ॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्। आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५ ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र। रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ २६ ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः। अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ २७ ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः। प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ २८ ॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा। देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ २९ ॥

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्। धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३०॥ (३)

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे। अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ३१ ॥

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी। विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३२ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद । मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांछ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥३३॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति । यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते । सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ३५ ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म । मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ । मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् । मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ ४० ॥ (४)

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने । सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः। आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४२ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती। सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः। यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्। उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ ५० ॥ (५)

बर्हिषदः पितर ऊत्यं१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥ ५२ ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति । यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ ५३ ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः । उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ५४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि । द्युमान् द्युमत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥ ६० ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥ [६] (१।१)

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—यमः; मन्त्रोक्ताः ४, ३४ अग्निः; ५ जातवेदाः; २६ पितरः ॥ छन्दः—१—३, ६, १४—१८, २०, २२, २३, २५, ३०, ३४, ३६, ४६, ४८, ५०—५२, ५६ अनुष्टुप्; ४, ७, ९, १३ जगती; २६, ४६, ५७ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८, १०—१२, २१, २७—२६, ३१—३३, ३५, ४७, ५३—५५, ५८—६० त्रिष्टुप्; १६ त्रिपदा गायत्री; २४ त्रिपदा समविषमाऽऽर्षी गायत्री; ३७ विराड् जगती; ३८, ३६, ४१ आर्षी गायत्री; ४०, ४२—४४ भुरिगार्षी गायत्री; ४५ ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥ मन्त्र ६० ।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन । स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् । शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥ ४ ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः। यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्। त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्। अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९ ॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान्। आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥ (७)

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा। अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा। ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु। तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते । येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चि-
देवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः । ऋषीन् तपस्वतो यम
तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः । तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चि-
देवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः । ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चि-
देवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् । ऋषीन् तपस्वतो यम
तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१९॥
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व । स्वधा याश्चकृषे जीवन्
तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥ (८)
ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि । सं गच्छस्व
पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥ २१ ॥
उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः । अजेन कृण्वन्तः शीतं
वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे । स्वान् गच्छतु ते मनो अधा
पितृँरुप द्रव ॥ २३ ॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते। मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही। लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः। तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः। तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम्। तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥ (९)

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः। यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥ ३१ ॥

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥ ३२ ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते । उताश्विनावभरद्
यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः । सर्वांस्तानग्न आ वह
पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । त्वं
तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५॥

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं१ तपः । वनेषु शुष्मो अस्तु ते
पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६ ॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह । यम-
श्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ।३८।

प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ।३९।

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥

वीरुमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४१

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४२

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४३

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४४

अमासि मात्रां स्व[रगामायुष्मान् भूयासम् । यथापरं न मासातै
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय। अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥ ४६ ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः। ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा। तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्। य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्। माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये॒नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ (११)

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम्। जाया पतिमिव वाससाभ्ये॒नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया। जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम्। उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः। स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् । यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे । ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा । इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च । नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८ ॥

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन । अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन । समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६० ॥ [१२] (२।१)

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—यमः; मन्त्रोक्ताः; ५, ६ अग्निः; ५० भूमिः; ५४ इन्द्रः; ५६ आपः ॥ छन्दः—१—३, ७, ९, १०, १२—१७, १९—२२, २४, ३८, ४०—४३, ४५, ४८, ५१, ५३, ५५, ५७, ५९, ६१—६३, ६५, ६६, ७३ त्रिष्टुप्; ४, ८, ११, २३ सतः पङ्क्तिः; ५ त्रिपदा निचृद् गायत्री; ६, ६८, ७०, ७२ अनुष्टुप्; १८ भुरिग्जगती; २५—२८, ४४, ४६ जगती २९ विराड् जगती; ३० पञ्चपदातिजगती; ३१ बिराट् शक्वरी; ३२—३५, ४७, ४९, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्; ३६ आसुर्यनुष्टुप् (एकावसाना); ३७ आसुरीगायत्री (एकावसाना); ३९ परात्रिष्टुप् पङ्क्तिः; ५० प्रस्तारपङ्क्तिः; ५४ पुरोऽनुष्टुप्

त्रिष्टुप् ५६ आर्ष्यनुष्टुप्; ५८ विराट् त्रिष्टुप्; ६० षट्पदा जगती; ६४ भुरिक् पथ्यापङ्क्ति:; ६७ पथ्याबृहती; ६९, ७१ उपरिष्टाद् बृहती ॥ मन्त्र ७३ ।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् । धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि । हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ २ ॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् । अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥ ३ ॥

प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती । अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः । क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व । संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे । तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥ ८ ॥

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् । मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन। चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥ [१३]

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्य॑नक्त्वासन्। रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥ ११ ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु। वर्चो म इन्द्रो न्य॑नक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२ ॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ १३ ॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः। दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ १४ ॥

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः। विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव। शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः। आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

अञ्जते व्य॑ञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्य॑ञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

यद् वो भद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयंशसो हि भूत। ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९ ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः। दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२०॥ [१४]

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः। शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥२१॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः। शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥ ॥ २२ ॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः। मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥२३ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः। विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः०…॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः०… ॥ २७ ॥

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः०… ॥ २८ ॥

धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥
प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः०…॥ ३० ॥ [१५]
दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः०… ॥ ३१ ॥
प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः०… ॥ ३२ ॥
उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः०… ॥ ३३ ॥
ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः ०… ॥ ३४ ॥
ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः०… ॥ ३५ ॥
धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥
इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् । प्र वां भरन् मानुषा
देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः । वि श्लोक
एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥
त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन । अक्षरेण प्रति
मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४० ॥ [१६]
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत । बृहस्पति-
र्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१ ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ४२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः। अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ ४४ ॥

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः। आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७ ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण। आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४८ ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्। ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा। माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥ [१७]

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् । ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥

उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् । एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥ ५२ ॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् । अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते । तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः । अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ५५ ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः । अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् । अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ५७ ॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्यो॑मन् । हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् । तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ ५९ ॥

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रष्वाव शीयताम् । शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति । मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ।६०।
(१८)

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः । इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु । इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वे षामसवो यमं गुः ॥ ६२ ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् । तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ६३ ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन । सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति । दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६६ ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः। तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९ ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि। यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते। शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१ ॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये। तेभ्यो घृतस्य कुल्यै३तु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते। अभि प्रेहि मध्यतो मापं हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥ (१९)

—:०:—

सूक्त ४

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता — यमः मन्त्रोक्ताः; ८१-८७ पितरः; ८८ अग्निः; ८९ चन्द्रमाः ॥ छन्दः—१, ४, ७, १४, ३६, ६० भुरिक त्रिष्टुप्; २, ५, ११, २९, ५८ जगती; ३ पञ्चपदा भुरिगति जगती; ६, १३ पञ्चपदा शक्वरी; ८ पंचपदाऽतिशक्वरी; ९ पचपदा भुरिक् शक्वरी; १०, १५, २८, ३०, ३४, ३५, ३९, ४०, ४४-४८, ५२, ५४, ६४, ६५, ६६, ७० त्रिष्टुप्; १२ महाबृहती; १६-२४ त्रिपदा भुरिङ्महाबृहती; [२५], ३१, ३२, ३८, ४१, ४२, ५५, ५७, ५९, ६१ अनुष्टुप्; २६, ३३, ४३ उपरिष्टाद् बृहती; २७ याजुषी गायत्री; ३९ पुरोविराडास्तारपङ्क्तिः ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ५०, ५१ पुरोविराड् सतःपङ्क्तिः; (?, जगती); [५३ सतःपङ्क्तिः]; ५६ ककुम्मत्यनुष्टुप्; ६२ भूरिगास्तारपङ्क्तिः; ६३ स्वराडास्तारपङ्क्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री; ६७ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; [६८, ७१

आसुर्यनुष्टुप्]; ७२-७४; [७१] आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुर्युष्णिक्; ७७ दैवी जगती; [७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती]; ८१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरी बृहती; ८६ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक् ८७ चतुष्पदा शङ्कुमत्युष्णिक्; ८८ पथ्या पङ्क्तिः; ८९ पञ्चपदा पथ्या पङ्क्तिः (६७, ६८, ७१, ८६ एकावसाना:) मन्त्र ८९।

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि। अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥ १ ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि। तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति। तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः। स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्। प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥ ५ ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व। जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति। अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥ ८ ॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः । दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

ययमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् । अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥ १० ॥ (२०)

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् । एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ॥

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः । शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् । तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः । शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् । तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु । हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ १७ ॥

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ १८ ॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ १९ ॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥२०॥ (२१)

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ २१ ॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ २२ ॥

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ २३ ॥

अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः ··· इह स्थ ॥ २४ ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ २५ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः । तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्त यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥

अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ २८ ॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् । ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९ ॥

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये । ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ३० ॥ (२२)

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे । तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् । तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु । एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ ३३ ॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते । तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् । स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥ ३५ ॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे । ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत । मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः । इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः । स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९ ॥

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् । आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥ ४० ॥ (२३)

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् । स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ४२ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः । तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः । पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने । सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः । आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ४६ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती । सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः । परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥ ४८ ॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः । अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥ ४९ ॥

एयमंगुन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः । यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्यं उपसंपराणयादिमान् ॥ ५० ॥ (२४)

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि । तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥ ५१ ॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् । यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् । आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम । तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ५४ ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः । एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा । स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः । तेभ्यो घृतस्य कुल्यै३तु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंञ्छुक्र आततः । सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६०॥ (२५)

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः । आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः । अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः । तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६५ ॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि । शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ६७

येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६९ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे । अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

(२६)

अग्नये॑ कव्य॒वाह॑नाय स्व॒धा नमः॑ ॥ ७१ ॥

सोमा॑य पि॒तृऽम॑ते स्व॒धा नमः॑ ॥ ७२ ॥

पि॒तृभ्य॒ः सोम॑वद्भ्यः स्व॒धा नमः॑ ॥ ७३ ॥

य॒माय॑ पि॒तृऽम॑ते स्व॒धा नमः॑ ॥ ७४ ॥

ए॒तत् ते॑ प्रततामह स्व॒धा ये च॒ त्वामनु॑ ॥ ७५ ॥

ए॒तत् ते॑ ततामह स्व॒धा ये च॒ त्वामनु॑ ॥ ७६ ॥

ए॒तत् ते॑ तत स्व॒धा ॥ ७७ ॥

स्व॒धा पि॒तृऽभ्यः॑ पृथिवि॒षद्भ्यः॑ ॥ ७८ ॥

स्व॒धा पि॒तृभ्यो॑ अन्तरिक्ष॒सद्भ्यः॑ ॥ ७९ ॥

स्व॒धा पि॒तृभ्यो॑ दिवि॒षद्भ्यः॑ ॥ ८० ॥ (२७)

नमो॑ वः पितर ऊ॒र्जे नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य ॥ ८१ ॥

नमो॑ वः पितरो॒ भामा॑य॒ नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॑ ॥ ८२ ॥

नमो॑ वः पितरो॒ यद् घो॒रं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो॒ यत् क्रू॒रं तस्मै॑ ।८३।

नमो॑ वः पितरो॒ यच्छि॒वं तस्मै॒ नमो॑ वः पितरो॒ यत् स्यो॒नं तस्मै॑ ।८४।

नमो॑ वः पितरः स्व॒धा वः॑ पितरः ॥ ८५ ॥

येऽत्र॑ पि॒तरः॑ पि॒तरो॒ येऽत्र॒ यू॒यं स्थ यु॒ष्मांस्तेऽनु॒ यू॒यं तेषां॒ श्रेष्ठा॑ भूयास्थ ॥ ८६ ॥

य इ॒ह पि॒तरो॑ जी॒वा इ॒ह व॒यं स्मः॑ । अ॒स्मांस्तेऽनु॑ व॒यं तेषां॒ श्रेष्ठा॑ भूयास्म ॥ ८७ ॥

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८८ ॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥ (२८) [४।१]

॥ इत्यष्टादशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथैकोनविंशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—यज्ञः ॥ छन्दः—१, २ पथ्या बृहती; ३ पङ्क्तिः ॥ मंत्र ३ ।

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः । यज्ञमिमं वर्धयतागिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत । यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे । यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥ (१।१)

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः—सिन्धुद्वीपः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ५ ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः । शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥

शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः । शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः। भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्। अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः। यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥ (१।२)

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्; २ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४।

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः। यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः। अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २ ॥

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश। पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम्। यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥ (१।३)

—:०:—

सूक्त ४

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पञ्चपदा विराडतिजगती; २ जगती; ३, ४ त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ४ ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः । तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि । अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् । यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥ ४ ॥ (१।४)

—:o:—

सूक्त ५

ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति । ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥ (१।५)

—:o:—

सूक्त ६

ऋषिः—नारायणः ॥ देवता—पुरुषः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १६ ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः। तथा व्य1क्रामद् विष्वङशनानशने अनु ॥ २ ॥

तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्य1म्। उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्य1कल्पयन्। मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥

ब्राह्मणो1स्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो1भवत्। मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥

विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः। तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः। राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥ (११६)

—:०:—

सूक्त ७

ऋषिः—गार्ग्यः ॥ देवता नक्षत्राणि ॥ छन्दः—१–३, ५ त्रिष्टुप्; ४ भुरिक्त्रिष्टुप्। मन्त्र ५।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि। तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा। पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु। राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु । अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म । आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥ (१।७)

—:०:—

सूक्त ८

ऋषि:—गार्ग्यः ॥ देवता—नक्षत्राणि ॥ छन्दः—१ विराड् जगती; २—७ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु । प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे । योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु । सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् । शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ४ ॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते । सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७॥ (१।८)

—:०:—

सूक्त ९

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता— मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ विराडुरोबृहती; २—४, ६—८, १०, ११, १३ अनुष्टुप्; ५ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ९ पञ्चपदा ककुम्मती (?, त्रिष्टुप्); १२ सप्तपदाऽष्टिः; १४ चतुष्पदा (?) संकृति ॥ मन्त्र १४।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वऽन्तरिक्षम् । शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् । शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव संसृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव संसृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि । यैरेव संसृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः । उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्। शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः। शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः। शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः। तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु। विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः। सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ १४ ॥ (१।९)

—:०:—

सूक्त १०

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः१ शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥ (२।१)

—:०:—

सूक्त ११

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ।२।

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ ३ ॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः । शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ४ ॥

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् । अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥ (२।२)

—:०:—

सूक्त १२

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—उषा ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ १ ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता। अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥ (२।३)

—:०:—

सूक्त १३

ऋषिः—अप्रतिरथः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ७—१० त्रिष्टुप्; ३—६, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ ॥ मन्त्र ११ ।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू। तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥ १ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥ २ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥ ५ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः । प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ १० ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥ ११ ॥ (२१४)

—:०:—

सूक्त १४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र १ ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् । असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥ (२१५)

—:०:—

सूक्त १५

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—१—४ इन्द्रः; ५, ६ मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ पथ्याबृहती; २,५ जगती; ३ विराड् पथ्या पङ्क्तिः; ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा । मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः । स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति । उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥ (२।६)

—:०:—

सूक्त १६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता - मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरी ॥ मन्त्र २ ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् । तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥ (२।७)

—:०:—

सूक्त १७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१—४, ८ जगते; ५, ७, १० जगती; ६ भुरिग् जगती; ९ पञ्चपदाऽतिशक्वरी ॥ मन्त्र १० ।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १ ॥
वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्...ददे स्वाहा ॥ २ ॥
सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन्...परि ददे स्वाहा ॥३॥
वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन्...परि ददे स्वाहा ॥४॥
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन्...परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥
आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु...परि ददे स्वाहा ॥६॥
विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन्...परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥
इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन्...परि ददे स्वाहा ॥८॥
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु...परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥
बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन्....परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥ (२।८)

—०—

सूक्त १८

ऋषिः— अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ८ साम्नी त्रिष्टुप्; २—४, ६ आर्च्यनुष्टुप्; ५ सम्राड् (?, स्वराड्) आर्च्यनुष्टुप्; ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्; (सर्वा द्विपदाः) ॥ मन्त्र १० ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशो ऽभिदासात् ।१।
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ।२।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥३ ॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥

अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ।८।

प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥

बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥ [२।९]

—:o:—

सूक्त १९

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ३, ९ भुरिग्बृहती; २, ४–८, ११ अनुष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः; १० स्वराट् पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ११ ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ २ ॥

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ३ ॥

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ४ ॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ५ ॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ६ ॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ७ ॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ८ ॥

इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ९ ॥

देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां···यच्छतु ॥ १० ॥

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां···यच्छतु ॥ ११ ॥ (२।१०)

—:०:—

सूक्त २०

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ जगती; ३ पुरस्ताद् बृहती; ४ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः । सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः । प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः। वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥ ४ ॥ (२।११)

—:०:—

सूक्त २१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—छन्दांसि ॥ छन्दः—द्विपदा साम्नी बृहती (एकावसाना)। मन्त्र १।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥ (३।१)

—:०:—

सूक्त २२

ऋषिः—अङ्गिरा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ साम्न्युष्णिक्; २, ६, १४—१६, २० दैवी पङ्क्तिः; ३, १९ प्राजापत्या गायत्री; ४, ७, ११, १७ दैवी जगती; ५, १२, १३ दैवी त्रिष्टुप्; ८—१० आसुरी जगती; १८ आसुर्यनुष्टुप्; २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २१।

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥ सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥

प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८॥ द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९॥

तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥ उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥

ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥

गुणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥ महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥

सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥

पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान । भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ २१ ॥ (३१२)

— :०:—

सूक्त २३

ऋषिः - अथर्वा ॥ देवता— मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ आसुरी बृहती; २—७ २०, २३, २७ दैवी त्रिष्टुप्; ८, १०—१२, १४—१६ प्राजापत्या गायत्री, १७, १९, २१, २४, २५, २९ दैवी पङ्क्तिः; ९, [१३], १८, [२२,] २६, २८ दैवी जगती; [३० चतुष्पदा त्रिष्टुप्] ॥ मन्त्र ३० ।

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥

षडृचेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥

द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥

चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ एकोनविंशतिः स्वाहा ॥ १६ ॥

विंशतिः स्वाहा ॥ १७ ॥ महत्काण्डाय स्वाहा ॥ १८ ॥

तृचेभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥ एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २० ॥

क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ २१ ॥ एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥

रोहितेभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ सूर्याभ्यां स्वाहा ॥ २४ ॥

व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥ २५ ॥ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥ २६ ॥

विषासह्यै स्वाहा ॥ २७ ॥ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २९ ॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान । भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ ३० ॥ (३।३)

—:०:—

सूक्त २४

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१—३ अनुष्टुप्; ४—६, ८ त्रिष्टुप्; ७ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ॥ मन्त्र ८ ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् । तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः । बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४ ॥

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उं। शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ५ ॥

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उं। शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥ ६ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व। तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥ (३।४)

—:०:—

सूक्त २५

ऋषिः—गोपथः ॥ देवता—वाजी ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च। उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥ (३।४)

—:०:—

सूक्त २६

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः। हिरण्यम् ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ४।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु। य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥

यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे। तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च । यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः । इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं [भुवत् तत् ते वर्चस्यं [भुवत् ॥ ४ ॥ [३।६]

—:०:—

सूक्त २७

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—त्रिवृत् चन्द्रमाश्च ॥ छन्दः—१, २, ४—८, १४ अनुष्टुप्; ३, ९ त्रिष्टुप्; १० जगती (?, त्रिष्टुप्) ११ आर्च्युष्णिक्; १२ आर्च्युनुष्टुप् १३ साम्नी त्रिष्टुप्; [१५ षट्पदाऽतिशक्वरी] ॥ मन्त्र १५ ।

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः । वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः । माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् । त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् । त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् । अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥

मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् । भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥

प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः। प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥

आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः। आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः। अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १२ ॥

ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ १३ ॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्। सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १४ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्यां रक्षन्त्वग्नयः। इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्। तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ १५ ॥ [४।१]

—:०:—

सूक्त २८

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—दर्भमणिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे। दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः। दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन् ॥ २ ॥

घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे। हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥ ३ ॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे। उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥ ४ ॥

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः। भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः। छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः। वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः। कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥

पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः। पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः। विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥ [४।२]

सूक्त २९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—दर्भमणिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ९ ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः । निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः । तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः । रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥

मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः । मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥

पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः । पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥

ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः । ओष मे सर्वान् दुर्हार्दु ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥

जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥ [४।३]

सूक्त ३०

ऋषि—ब्रह्मा ।। देवता—दर्भमणिः ।। छन्दः—अनुष्टुप् ।। मन्त्र ५ ।

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥

शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥

त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥

सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह । ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥ [४।४]

—:०:—

सूक्त ३१

ऋषिः—सविता (पुष्टिकामः) ।। देवता—औदुम्बरमणिः ।। छन्दः—१—४, ७—१०, अनुष्टुप्; ५, १२ त्रिष्टुप्; ६ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी; १४ विराडास्तारपङ्क्तिः ।। मन्त्र १४ ।।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा । पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् । औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे । औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः । गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् । पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु । मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च । इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये । पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे । एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान । त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मां सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु । औदुम्बरः
स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ रायस्पोषाय प्रति
मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । स नः सनिं मधुमतीं
कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥ [४।५]

—:o:—

सूक्त ३२

ऋषिः—भृगुः (आयुष्कामः) ॥ देवता—दर्भः ॥ छन्दः—१—७ अनुष्टुप्; ८ पुरस्ताद् बृहती; ९ त्रिष्टुप्; १० जगती ॥ मन्त्र १० ।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः । दर्भो य उग्र ओषधिस्तं
ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते । यस्मा अच्छिन्नपर्णेन
दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः । त्वया सहस्रकाण्डेनायुः
प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत । त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां
नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् । उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्
सहिषीमहि ॥ ५ ॥

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः। सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्। तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च। यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च। यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥

सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव। स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥ [४।६]

—:o:—

सूक्त ३३

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—दर्भः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ४ आस्तारपङ्क्तिः ॥ मन्त्र ५ ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्। स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥ १ ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः। नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे। त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः। ओजो देवानां बल-
मुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥
दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याऽणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः। अति-
ष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥ [४।७]

—:०:—

सूक्त ३४

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः। द्विपाच्चतुष्पादस्माकं
सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये। सर्वान् विनक्तु तेजसो-
ऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः। अपेतो जङ्गिडामति-
मिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः। अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण
आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः। विष्कन्धं येन सासह
संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि। तमु त्वाङ्गिरा इति
ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः । विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ । अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् । तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥ [५।१]

—:०:—

सूक्त ३५

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः ॥ छन्दः—१, २, ५ अनुष्टुप्; ३ पथ्यापङ्क्तिः, ४ निचृत् त्रिष्टुप्; ॥ मन्त्र ५ ।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः । देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् । तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः । परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः । सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥ [५।२]

—:०:—

सूक्त ३६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—शतवारः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मंत्र ६ ।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा । आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः । सर्वां दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् । दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः । दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् । शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥ [५।३]

—:०:—

सूक्त ३७

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ आस्तारपङ्क्तिः; ३ त्रिपदा महाबृहती; ४ पुर उष्णिक् ॥ मन्त्र ४ ।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्या᳡णि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम् । इन्द्रियाय त्वा कर्मणे
वीर्या᳡य प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा । अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय
पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य
पतये यजे ॥ ४ ॥ [५।४]

—:o:—

सूक्त ३८

ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—गुल्गुलुः ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २ चतुष्पदोष्णिक्; ३ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते । यं भेषजस्य गुल्गुलोः
सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते । यद् गुल्गुलु सैन्धवं
यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥ [५।५]

—:o:—

सूक्त ३९

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—कुष्ठः ॥ छन्दः—१, ९, १० अनुष्टुप्; २, ३ पञ्चपदा पथ्या पङ्क्तिः; ४ षट्पदा जगती; ५ सप्तपदा शक्वरी; ६–८ अष्टिः । मन्त्र १० ।

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः। नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता।···दिवा ॥ ३ ॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव। नद्यायं···दिवा ॥ ४ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि। त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः। स कुष्ठो विश्वभेषजः। साकं सोमेन तिष्ठति। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत। स कुष्ठो···यातुधान्यः ॥ ६ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः··· यातुधान्यः ॥ ७ ॥

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः··· यातुधान्यः ॥ ८ ॥

यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः। यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥

शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः। तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥ [५।६]

सूक्त ४०

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—विश्वेदेवाः; बृहस्पतिः ।। छन्दः—१ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् २ पुराककुम्मत्युपरिष्टाद् बृहती; ३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।। मंत्र ४।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम। विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन। सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः। शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥ [५।७]

—:०:—

सूक्त ४१

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—तपः ।। छन्दः—त्रिष्टुप्; ।। मन्त्र १।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥ [५।८]

—:०:—

सूक्त ४२

ऋषिः—ब्रह्मा ।। देवता—ब्रह्म ।। छन्दः—अनुष्टुप्; २ ककुम्मती पथ्या पङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ।। मन्त्र ४।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः। अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥

ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता। ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः। इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥

अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्। अपां नपा-तमश्विना हुवे धियं इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥ [५।६]

—:०:—

सूक्त ४३

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—शङ्कुमती पथ्या पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ८।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्व-ग्निर्मेधा दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

यत्र······वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥ २ ॥

यत्र···सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा ।३।

यत्र···चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा ।४।

यत्र···सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा ।५।

यत्र···इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ।६।

यत्र...आपो मा तत्र नयत्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ।७।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥ [५।१०]

—:०:—

सूक्त ४४

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—आञ्जनम्; ८, ९ वरुणः ॥ छन्दः—१, ३, ६—१० अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा शङ्कुमत्युष्णिक्; ५ त्रिपदा निचृद् विषमा गायत्री ॥ मन्त्र १०।

आयुषोसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे। तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥ १ ॥

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः। सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥

आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्। कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५॥

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः। न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥

वी३दं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः। अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥

बह्वीदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥

मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥ [५।११]

—:०:—

सूक्त ४५

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—१–५ आञ्जनम्; ६–१० अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१,–२ अनुष्टुप्; ३–५ त्रिष्टुप्; ६ विराङ्महाबृहती; ७–१० निचृन्महाबृहती ॥ मत्र १० ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥

यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे । अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥

अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः । चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु । ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥

आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् । चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५ ॥

अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥

इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥

सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥

भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥

मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥ [५।१२]

—:०:—

सूक्त ४६

ऋषिः—प्रजापतिः ॥ देवता—अस्तृतमणिः ॥ छन्दः—१ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; २ षट्पदा भुरिक् शक्वरी; ३, ७ पञ्चपदा पथ्या पङ्क्ति; ४ चतुष्पदा त्रिष्टुप्; ५ पञ्चपदा अतिशक्वरी; ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा विराड् जगती । मन्त्र ७ ।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः । इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे । तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव । पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्या॑णि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः । शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा । सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥ [६।१]

—:०:—

सूक्त ४७

ऋषिः—गोपथः ॥ देवता—रात्रिः ॥ छन्दः—१ पथ्या बृहती; २ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा परातिजगती; ३–५, ८, ९ अनुष्टुप्; ६ पुरस्ताद बृहती; ७ षट्पदा जगती ॥ मन्त्र ९ ।

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति । अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ।२।

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव। अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि। चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः। तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत। मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः। परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः। परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु। हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि। गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥ [६।२]

—:०:—

सूक्त ४९

ऋषिः—गोपथः ॥ देवता—रात्रिः ॥ छन्दः—१ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री २ त्रिपदा विराडनुष्टुप्; बृहतीगर्भानुष्टुप्; ४, ५ अनुष्टुप्; ५ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ६ ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि। तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥

रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् । यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत । गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति । पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि । तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥ [६।३]

—:०:—

सूक्त ४६

ऋषिः—गोपथः; १० भरद्वाजश्च ॥ देवता—रात्रिः ॥ छन्दः—१—५, ८ त्रिष्टुप्; ६ आस्तारपङ्क्तिः; ७ पथ्या पङ्क्तिः [९ अनुष्टुप्;] १० षट्पदा जगती ॥ मन्त्र १० ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य । अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥

अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः । उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥ २ ॥

वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् । अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३ ॥

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे । अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु । अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५ ॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे । असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना । रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि । चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षामममुक्थाः ॥ ८ ॥

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः । रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ।१०।

[६।४]

—:०:—

सूक्त ५०

ऋषिः—गोपथः ॥ देवता—रात्रिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः। तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥

रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम्। गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥

यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते। एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥

अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम्। अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥

यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु। यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥

उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः। उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥ [६।५]

—:०:—

सूक्त ५१

ऋषिः—ब्रह्मा। देवता – १ आत्मा; २ सविता ॥ छन्दः—१ एकपदा (?) ब्राह्म्यनुष्टुप्; २ त्रिपदा यवमध्योष्णिक् ॥ मन्त्र २।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्। पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥ [६।६]

—:०:—

सूक्त ५२

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—कामः ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पादुष्णिक्; ५ उपरिष्टाद् बृहती ॥ मन्त्र ५ ।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् । स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते । त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥

कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः । तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥ [६।७]

—:०:—

सूक्त ५३

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—कालः ॥ छन्दः—१—४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती; ६—१० अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १० ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः । तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः । स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः। स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् । पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत । काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥ [६।८]

—:०:—

सूक्त ५४

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—कालः ॥ छन्दः—१, ३, ४ अनुष्टुप्; २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ षट्पदा विराडष्टिः ॥ मन्त्र ५ ।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः। कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही। द्यौर्मही काल आहिता ।२।

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा। कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम्। काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः। इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः। सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५ ॥ [६।६]

—:०:—

सूक्त ५५

ऋषिः— भृगुः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ त्रिष्टुप्; २ आस्तारपङ्क्तिः; ५ विराट् पुरउष्णिक्, ६ निचृदनुष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै। रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड। रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ २ ॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥
अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये। सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत्। अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने। रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ६ ॥

—:०:—

सूक्त ५६

ऋषिः—यमः ॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः। एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि। ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्। तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्। त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः। स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥ [७।२]

—:०:—

सूक्त ५७

ऋषिः—यम. ॥ देवता— दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; [२ पङ्क्तिः;] ३ चतुष्पदा (?, षट्पदा) त्रिष्टुप्; ४ षट्पदोष्णिग्बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी ५ पञ्चपदापरशाक्वरीऽतिजगती ॥ मन्त्र ५ ।

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥ १ ॥

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः । समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न । स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् । अनास्माकं देवपीयुं पियारु वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् । नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि । दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥ [७।३]

—:०:—

सूक्त ५८

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्; २ पुरोऽनुष्टुप्; ३ चतुष्पदाऽतिशक्वरी; ५ भुरिक् त्रिष्टुप्; ६ [स्वराट् त्रिष्टुप्] ॥ मन्त्र ६ ।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती । श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ १ ॥

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे । वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥

वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम । यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि । पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् । इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

[७।४]

—:०:—

सूक्त ५९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ गायत्री; २, ३ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः । अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम्। अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सो ऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ३ ॥ [७।५]

---:०:---

सूक्त ६०

ऋषिः - ब्रह्मा ॥ देवता वागादिमन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—१ पथ्या बृहती; २ ककुम्मती पुर उष्णिक् । मन्त्र २ ।

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः । अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः । प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥ [७।६]

—:०:—

सूक्त ६१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—विराट् पथ्या बृहती ॥ मन्त्र १ ।

तनूस्तन्वा ऽमे सहे दतः सर्वमायुरशीय । स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥ [७।७]

—:०:—

सूक्त ६२

ऋषि—ब्रह्मा ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥ [७।८]

—:०:—

सूक्त ६३

ऋषिः —ब्रह्मा ॥ देवता—ब्रह्मणस्पतिः ॥ छन्दः—विराडुपरिष्टाद् बृहती ॥ मन्त्र १ ।

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥ [७।६]

—:०:—

सूक्त ६४

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ४।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि। तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव। आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥ [७।१०]

—:०:—

सूक्त ६५

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—सूर्यो जातवेदाः ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र १।

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्। अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥ [७।११]

—:०:—

सूक्त ६६

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—सूर्यो जातवेदा वज्रः ॥ छन्दः—अतिजगती ॥ मन्त्र १।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥ [७।१२]

—:०:—

सूक्त ६७

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—प्राजापत्या गायत्री ॥ मन्त्र ८।

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥
भूयसी शरदः शतात् ॥ ८ ॥ [७।१३]

—:०:—

सूक्त ६८

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—मन्त्रोक्तं कर्म ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥ मन्त्र १।

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥ [७।१४]

—:०:—

सूक्त ६९

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१ आसुर्यनुष्टुप्; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुरी गायत्री; ४ साम्न्युष्णिक् ॥ मन्त्र ४।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥

जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥ [७।१५]

—:०:—

सूक्त ७०

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र १ ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥ [७।१६]

—:०:—

सूक्त ७१

ऋषिः—ब्रह्मा ॥ देवता—गायत्री ॥ छन्दः—पञ्चपदाऽतिजगती ॥ मन्त्र १ ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥ [७।१७]

—:०:—

सूक्त ७२

ऋषिः—भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा ॥ देवता—परमात्मा देवाश्च ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् । कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥ [७।१८]

॥ इत्येकोनविंशं काण्डम् समाप्तम् ॥

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

अथ विंशं काण्डम्

सूक्त १

ऋषिः—विश्वामित्रः; गोतमः ३ विरूपः ।। देवता—१ इन्द्रः; २ मरुतः; ३ अग्निः ।। छन्दः—गायत्री ।। मन्त्र ३ ।

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ।१।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ।२।

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये ।३। (१।१)

—:०:—

सूक्त २

ऋषिः – गृत्समदो मेधातिथिर्वा ? ।। देवता—१ मरुतः; २ अग्निः; ३ इन्द्रः; ४ द्रविणोदाः ।। छन्दः—१, २ विराड् गायत्री; ३ आर्च्युष्णिक्; ४ साम्नी त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ४ ।

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।।१।।

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।।२।।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।।३।।

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।।४।। (१।२)

—:०:—

सूक्त ३

ऋषिः—इरिम्बिठिः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—गायत्री ।। ।। मन्त्र ३ ।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ (१।३)

—:०:—

सूक्त ४

ऋषिः—इरिम्बिठिः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—गायत्री ।। मन्त्र ३ ।

आ नो याहि सुतावतोस्माकं सुष्टुतिरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः । १ ।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३॥ (१।४)

—:०:—

सूक्त ५

ऋषिः— इरिम्बिठिः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः— गायत्री ।। मन्त्र ७ ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥ (१।५)

—:०:—

सूक्त ६

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ९ ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ।१।
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ।३।
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ।४।
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ।
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ।
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥ (१।६)

—:०:—

सूक्त ७

ऋषिः—१—३ सुकक्षः; ४ विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ४ ।

उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत ॥२॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत्। उरुधारेव दोहते ॥३॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥४॥
[११७]

—:०:—

सूक्त ८

ऋषिः—भरद्वाजः कुत्सः विश्वामित्रः॥ देवता इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ मन्त्र ३।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः। आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय। उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै। समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥ (११८)

—:०:—

सूक्त ९

ऋषिः—१, २ नोधाः; ३, ४ मेधातिथिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः १, २ त्रिष्टुप् (?); [१, २] ३, ४ बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)॥ मन्त्र ४।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्। क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये। येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३ ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः । सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४ ॥ (१।९)

—:०:—

सूक्त १०

ऋषिः—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ॥ मन्त्र २ ।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते । सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः । इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥ (१।१०)

—:०:—

सूक्त ११

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—त्रिष्टुप् ॥ मंत्र ११ ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् । ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥ १ ॥

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् । इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः । अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः । प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि । अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि । वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः । विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः । ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् । हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् । बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥ (१।११)

—:०:—

सूक्त १२

ऋषिः—१–६ वसिष्ठः; ७ अत्रिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ । आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि । नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः। वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र। याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे। एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः। स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा। युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥ (१।१२)

—:०:—

सूक्त १३

ऋषि— १ वामनवः; २ गोतमा; ३ कुत्सः; ४ विश्वामित्रः। देवता—इन्द्राबृहस्पती; २ मरुतः; ३, ४ अग्निः। छन्दः—१–३ जगती, ४ त्रिष्टुप्। मन्त्र ४।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू। आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः। सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ २ ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः । पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४ ॥ (१।१३)

—:०:—

सूक्त १४

ऋषिः— सौभरिः॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः (विषमा-ककुप्+समा-सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४ ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् । त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत । आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥ (२।१)

—:०:—

सूक्त १५

ऋषिः - गोतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे । अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः । यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे । यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो । नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥४॥

भूरि त इन्द्र वीर्य१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण । अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ । अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥ (२।२)

—:०:—

सूक्त १६

ऋषिः—अयास्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १२ ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः । गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्१का अनावन् ॥ १ ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय । जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः । बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः । बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् । बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः। दुद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्। आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्। निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥

सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि। बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः। अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्। राज्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥ ११ ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति। बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥ (२।३)

—:०:—

सूक्त १७

ऋषिः—कृष्णः (१२ वसिष्ठः ?) ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१–१० जगती; ११, १२ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १२ ।

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत। परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय। राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते॥ २॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते। तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः॥ ३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः। प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्॥ ४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्। न तत ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः॥ ५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा। यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः॥ ६॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्। वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना॥ ७॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः। स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते॥ ८॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्। वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः॥ ९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्। वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥ १०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥ ११॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य। धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥ (२।४)

—:०:—

सूक्त १८

ऋषिः—१–३ मेधातिथिः प्रियमेधश्च; ४–६ वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ। तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्। विद्धी त्व१स्य नो वसो ।४।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे। त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्। त्वया प्रति ब्रुवे युजा ६ (३।१)

—:०:—

सूक्त १९

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ७ ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥
(३।२)

—:०:—

सूक्त २०

ऋषिः—विश्वामित्रः; ५—७ गृत्समदः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ [४ अनुष्टुप्] मन्त्र ७।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ।१।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ।२।

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ।

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ।५।

इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ।६।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (३।३)

—:०:—

सूक्त २१

ऋषिः—सव्य आंगिरसः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—९ जगती; १०, ११ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ११।

न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः । नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः । शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु । अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना । इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः । सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते । यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा । नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी । त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः । षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् । त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम । त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥ (३।४)

—:०:—

सूक्त २२

ऋषिः—१—३ त्रिशोकः; प्रियमेधः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—गायत्री ।। मन्त्र ६ ।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥
(३।५)

—:०:—

सूक्त २३

ऋषिः—विश्वामित्रः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—गायत्री ।। मन्त्र ९ ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोलाशम् ।३।
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ।

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहंतामिन्द्र केशिनां । घृतस्नू बर्हिरासदें ॥६॥

(३।६)

—:०:—

सूक्त २४

ऋषिः—विश्वामित्रः ।। ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—गायत्री ।। मन्त्र ६ ।

उप नः सुतमा गंहि सोमंमिन्द्र गवांशिरम् । हरिभ्यां यस्तें अस्मयुः ।१।

तमिंन्द्र मदुमा गंहि बर्हिष्ठां ग्रावंभिः सुतम् । कुविन्न्व॑स्य तृप्णवंः ।२।

इन्द्रंमित्था गिरो ममाच्छांगुरिषिता इतः । आवृते सोमंपीतये ॥३॥

इन्द्रं सोमंस्य पीतये स्तोमैरिह हंवामहे । उक्थेभिः कुविदागमंत् ॥४॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दंधिष्व शतक्रतो । जठरें वाजिनीवसो ।५।

विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेंषु दधृषं कंवे । अधां ते सुम्नमींमहे ॥६॥

इममिंन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिब । आगत्या वृषंभिः सुतम् ।७।

तुभ्येदिंन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतयें । एष रांरन्तु ते हृदि ।८।

त्वां सुतस्यं पीतयें प्रत्नमिंन्द्र हवामहे । कुशिकासों अवस्यवंः ॥९॥

(३।७)

—:०:—

सूक्त २५

ऋषिः—१—६ गोतमः; ७ अष्टकः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१—६ जगती; ७ त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ७ ।

अश्वांवति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिंन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृंणक्षि वसुंना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ।१।

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः। प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः। असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया। सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि। आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि। ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्। इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ७ ॥ (३।८)

—:o:—

सूक्त २६

ऋषिः—१–३ शुनःशेपः; ४–६ मधुच्छन्दाः ॥ देवता —इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री। मन्त्र ६।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि ॥४॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ।६। (३।९)

—:०:—

सूक्त २७

ऋषिः—गोसूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात ।
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद् दित्ससि स्तुतो मघम्।
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत। चक्राण ओपशं दिवि ।५।
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ।६।
(३।१०)

—:०:—

सूक्त २८

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री ३, ४ त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ४ ।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृह्लानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे ।३।
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः ॥४॥
(३।११)

—:०:—

सूक्त २९

ऋषिः—गोषूक्तयश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ५ ।

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥२॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥३॥

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूंरधूनुथाः ॥४॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्य नाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५॥

(३।१२)

—:०:—

सूक्त ३०

ऋषिः—वरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र ५ ।

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् । घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः । आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः । द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या । तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥ ४ ॥

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः । त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यं मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥ (३।१३)

—:०:—

सूक्त ३१

ऋषिः—बरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती ॥ मन्त्र ५ ।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥ २ ॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत । अर्वद्भिर्यो
हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ३ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः । प्र यत्
कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् । मही
चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥ (३।१४)

—:०:—

सूक्त ३२

ऋषिः—बरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ जगती; २, ३ त्रिष्टुप् । मन्त्र ३ ।

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्य[मसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र । पिबा
यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते । ममद्धि सोमं
मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥ [३।१५]

—:०:—

सूक्त ३३

ऋषिः—अष्टकः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मंत्र ३ ।

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व । मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ।। १ ।।

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् । इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ।। २ ।।

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः । प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ।। ३ ।। [३।१६]

—:०:—

सूक्त ३४

ऋषिः—गृत्समदः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र १८ ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् । यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ।। १ ।।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् । यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ।। २ ।।

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य । यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ।। ३ ।।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः । श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ।। ४ ।।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् । सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ।। ५ ।।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः। युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः। यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः। समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान। यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्। ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य। अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्। यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते। यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती। यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १५ ॥

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य । स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा । यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः । वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८॥ [४१९]

—:०:—

सूक्त ३५

ऋषिः—नोधाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १६ ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय । ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति । इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन । मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय । गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे । वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय । वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना। मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः। परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्। स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्ष रणाय ॥ ९ ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः। गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्। ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तर्वणिः कः ॥ ११ ॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः। गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः। युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते। उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः। प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥ [४।२]

—:०:—

सूक्त ३६

ऋषिः— भरद्वाजः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ११ ।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्चं आभिः । यः पत्यते
वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः । यो अस्कृधो-
युरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः । तुवि-
ग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन । अच्युता
चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै । स नो
वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा । तपा
वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् । धिष्व
वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् । यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो । न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥ [४।३]

—:०:—

सूक्त ३७

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ११ ।

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः । यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये । दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् । प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि । त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः । निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे । वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै । त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः। नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था। ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि। तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व। उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥ [४।४]

—:०:—

सूक्त ३८

ऋषिः—१—३ इरिम्बिठिः; ४—६ मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ।२।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः सुतावन्तो हवामहे ।३।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।५।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ।६। [५।१]

—:०:—

सूक्त ३९

ऋषिः—१ मधुच्छन्दाः; २—५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ५ ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ।४।

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥५॥

[५।२]

—:०:—

सूक्त ४०

ऋषिः—मधुच्छन्दा ॥ देवता—१, इन्द्रः मरुतश्च; २-३ मरुतः । छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥३॥ [५।३]

—:०:—

सूक्त ४१

ऋषिः—गोतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥
[५।४]

—:०:—

सूक्त ४२

ऋषिः—कुरुस्तुतिः (?, कुरुसुतिः) ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१॥

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ।२।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३॥
[५।५]

—:०:—

सूक्त ४३

ऋषिः—त्रिशोकः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥
[५।६]

—:०:—

सूक्त ४४

ऋषिः—इरिम्बिठिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥ [५।७]

—:०:—

सूक्त ४५

ऋषिः—शुनःशेपो देवरातापरनामा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ [५।८]

—:०:—

सूक्त ४६

ऋषिः—इरिम्बिठिः देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्त्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च। अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥ [५।९]

—:०:—

सूक्त ४७

ऋषिः—१—३ सुकक्षः; ४—६, १०—१२ मधुच्छन्दाः; ७—९ इरिम्बिठिः; १३—२१ प्रस्कण्वः ॥ देवता—१—१२ इन्द्रः; १३—२१ सूर्यः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र २१ ।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ।३।
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।५।
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ।६।
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ।८।
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ।९।
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि । १० ।
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।११।
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१३॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ।१४।
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१६॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्व॒र्दृशे ॥ १७ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्य जन्मानि सूर्य ।१९।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२०॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्य॒ः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥ [५।१०]

—:०:—

सूक्त ४८

ऋषिः—१—३ खिलम् (?); ४—६ उपरिबभ्रवः सर्पराज्ञी वा ॥ देवता — १—३ सूर्यः (?); ४—६ गौः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ।१।

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ।२।

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्व॒ः ॥ ४ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः व्यख्यन्महिषः स्व॒ः ॥ ५ ॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥ [५।११]

—:०:—

सूक्त ४९

ऋषिः—१—३ खिलम् (?); ४, ५ नोधाः; ६, ७ मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥

छन्दः —१ —३ गायत्री ; ४ —७ बार्हतः प्रगाथः (समा —बृहती+विषमा—सतो-बृहती) ।। मन्त्र ७ ।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥१॥

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥

शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति । विमदन् बर्हिरासरन् ।३।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥

द्युक्ष सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् । क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये । येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः । सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे य क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥ [५।१२]

—:०:—

सूक्त ५०

ऋषिः— मेध्यातिथिः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतो-बृहती) ।। मन्त्र २ ।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः । नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते । कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥ [५।१३]

—:०:—

सूक्त ५१

ऋषिः—१,—२ प्रस्कण्वः; ३, ४ पुष्टिगुः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (विषमा बृहती + समा सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४।

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे। गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये। यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः। गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥ [५।१४]

—:०:—

सूक्त ५२

ऋषिः—मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बृहती ॥ मन्त्र ३।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः। कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम्। पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥ [५।१५]

—:०:—

सूक्त ५३

ऋषिः—मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बृहती ॥ मन्त्र ३ ।

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे । अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे । नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः । यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥ [५।१६]

—:o:—

सूक्त ५४

ऋषिः—रेभः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ अतिजगती; २, ३ उपरिष्टाद् बृहती ॥ मन्त्र ३ ।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे । क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये । स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा । सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३ ॥ [५।१७]

—:o:—

सूक्त ५५

ऋषिः—रेभः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ अति जगति; २, ३ बृहती ॥ मन्त्र ३ ।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः। स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्। यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥ [५।१८]

—:०:—

सूक्त ५६

ऋषिः—गोतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् (?; पङ्क्तिः) ॥ मन्त्र ६।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादुदिः। असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः। सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४ ॥

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे। विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्। अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥ [५।१६]

—:o:—

सूक्त ५७

ऋषिः—१—३ मधुच्छन्दाः; ४—७ विश्वामित्रः; ८—१० गृत्समदः; ११—१६ मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—६, ८—१० गायत्री; ७ अनुष्टुप्; ११—१६ पथ्या पङ्क्तिः ॥ मन्त्र १६ ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५ ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ८

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ।९।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे । अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ११ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे । नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥

य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः । यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः । पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः । कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् । पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ [५।२०]

—:०:—

सूक्त ५८

ऋषिः—१, २ नृमेधः; ३, ४ जमदग्निः ॥ देवता—१, २ इन्द्रः; ३, ४ सूर्यः ॥

छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (विषमा बृहती+समा सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४ ।

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः। सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥

बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि। मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥ [५।२१]

—:०:—

सूक्त ५९

ऋषिः—१, २ मेध्यातिथिः; ३, ४ वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ॥ (विषमा बृहती+समा सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः। इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः। य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा। पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥ [५।२२]

सूक्त ६०

ऋषिः—१—३ सुतकक्षः सुकक्षो वा; ४—६ मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ६।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ।५।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

[५।२३]

—:०:—

सूक्त ६१

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ मन्त्र ६ ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ४

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥

स रा॑जसि पुरुष्टुतँ॒ एको॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे । इन्द्र॒ जैत्रा॑ श्रव॒स्या॑ च॒ यन्त॑वे ॥ ६ ॥ [५।२४]

—:०:—

सूक्त ६२

ऋषिः—१—४ सोभरिः; ५—७ नृमेधः; ८—१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—४ काकुभः प्रगाथः (विषमा ककुप्+समा सतोबृहती); ५—१७ उष्णिक् ॥ मन्त्र १० ।

व॒यमु॑ त्वाम॑पूर्व्य स्थू॒रं न कच्चि॒द् भर॑न्तोऽव॒स्यवः॑ । वाजे॑ चि॒त्रं ह॑वामहे ॥ १ ॥

उप॑ त्वा॒ कर्म॑न्नू॒तये॒ स नो॒ युवो॒ग्रश्च॑क्राम॒ यो धृ॒षत् । त्वामिद्ध्य॑वि॒तारँ॑ ववृ॒महे॒ सखा॑य इन्द्र सान॒सिम् ॥ २ ॥

यो नं॑ इ॒दमि॑दं पु॒रा प्र वस्य॑ आनि॒नाय॒ तमु॑ व स्तुषे । सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥ ३ ॥

हर्य॑श्वं॒ सत्प॑तिं चर्ष॒णीसहं॒ स हि ष्मा॒ यो अम॑न्दत । आ तु नः॒ स वं॑यति॒ गव्य॒मश्व्यं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घवा॑ श॒तम् ॥ ४ ॥

इन्द्रा॑य॒ साम॑ गायत॒ विप्रा॑य बृह॒ते बृ॒हत् । धर्म॒कृते॑ विप॒श्चिते॑ पन॒स्यवे॑ ॥ ५ ॥

त्वमि॑न्द्राभि॒भूर॑सि॒ त्वं सूर्य॑मरोचयः । वि॒श्वक॑र्मा वि॒श्वदे॑वो म॒हाँ अ॑सि ॥ ६ ॥

वि॒भ्राज॒ञ् ज्योति॑षा॒ स्व॑१रग॑च्छो रोच॒नं दि॒वः । दे॒वास्त॑ इन्द्र स॒ख्याय॑ येमिरे ॥ ७ ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ।८।

यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥ [५।२५]

—:०:—

सूक्त ६३

ऋषिः—१—२, ३ (पूर्वार्धस्य) भुवनः साधनो वा; ३ (उत्तरार्धस्य) भरद्वाजः; ४—६ गोतमः; ७—९ पर्वतः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप्; ४—९ उष्णिक् ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् । हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् । अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

य इ॑न्द्र सोम॒पात॑मो मद॑: शविष्ठ॒ चेत॑ति । येना॑ हंसि॒ न्य॑१॒त्त्रिणं॒ तमी॑महे ॥ ७ ॥

येना॑ दश॑ग्व॒मध्रि॑गुं वे॒पय॑न्तं॒ स्व॑र्णरम् । येना॑ समु॒द्रमावि॑था॒ तमी॑महे ॥ ८ ॥

येन॒ सिन्धुं॑ म॒हीर॒पो रथाँ॑ इव प्रचो॒दय॑: । पन्था॑मृ॒तस्य॒ यात॑वे॒ तमी॑महे ॥ ९ ॥ [५।२६]

—:o:—

सूक्त ६४

ऋषि—१—३ नृमेधः; ४—६ विश्वमनाः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—उष्णिक् ।। मन्त्र ६ ।

एन्द्र॑ नो गधि प्रि॒यः स॑त्राजिदगो॑ह्यः । गि॒रिर्न वि॒श्वत॑स्पृ॒थुः पति॑र्दि॒वः ॥ १ ॥

अ॒भि हि स॑त्य सोमपा उ॒भे ब॒भूथ॒ रोद॑सी । इन्द्रासि॑ सुन्व॒तो वृ॒धः पति॑र्दि॒वः ॥ २ ॥

त्वं हि शश्व॑तीना॒मिन्द्र॑ द॒र्ता पु॒राम॑सि । ह॒न्ता दस्यो॒र्मनो॑र्वृ॒धः पति॑र्दि॒वः ॥ ३ ॥

एदु॒ मध्वो॑ म॒दिन्त॑रं सि॒ञ्च वा॑ध्वर्यो॒ अन्ध॑सः । ए॒वा हि वी॒र स्तव॑ते स॒दावृ॑धः ॥ ४ ॥

इन्द्र॑ स्थातर्हरीणां॒ नकि॑ष्टे पू॒र्व्यस्तु॑तिम् । उदा॑नंश॒ शव॑सा॒ न भ॒न्दना॑ ॥ ५ ॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥ [५।२७]

—:०:—

सूक्त ६५

ऋषिः—१—३ विश्वमनाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ मन्त्र ३।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे। ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥ [५।२८]

—:०:—

सूक्त ६६

ऋषिः—१—३ विश्वमनाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् मन्त्र ३।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्। अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम्। सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥ [५।२९]

—:०:—

सूक्त ६७

ऋषिः—१—३ परुच्छेपः; ४—७ गृत्समदः ॥ देवता—१, ६ इन्द्रः; २, ४ मरुतः; ३, ५ अग्निः; ७ द्रविणोदाः ॥ छन्दः—१—३ अत्यष्टिः; ४-७ जगती ॥ मन्त्र ७ ।

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः । सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः । यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु । प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ५ ॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः । तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥ ६ ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते । अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥

[६।१]

—:०:—

सूक्त ६८

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र १२ ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥७॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ।८।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ।९।

यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ।१०।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥११॥

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ।१२। [६।२]

—:०:—

सूक्त ६९

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—१—११ इन्द्रः; १२ मरुतः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र १२ ।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् । गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ।२।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥३॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ।४।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ।५।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ।६।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥९॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा १०

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

[६।३]

—:०:—

सूक्त ७०

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—१, २ इन्द्रमरुतः; ३—५ मरुतः; ६—२० इन्द्रमरुतः (?, इन्द्रः) ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र २०।

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ।२।
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ।३।
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ५
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ६
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।८।
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ६
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥१२॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥१८॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः १६
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥२०॥
[६।४]

—:०:—

सूक्त ७१

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र १६ ।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः २

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ।३।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ।४।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ।५।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ।७।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ८

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥१०॥

सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ।१२।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ।१४।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ।१५।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति १६ [६।५]

—:०:—

सूक्त ७२

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥ मंत्र ३ ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि । इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिं चिकेतसि । आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥ [७।१]

—:०:—

सूक्त ७३

ऋषिः—१—३ वसिष्ठः; ४—६ वसुक्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—३ विराडनुष्टुप्; ४, ५ जगती; ६ अभिसारिणी त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरंण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः। आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते। अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान। तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥ [७।२]

—:०:—

सूक्त ७४

ऋषिः—शुनःशेपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पंक्तिः ॥ मन्त्र ७।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि। आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना। आ तू न॰…॥ २ ॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने। आ तू न॰…॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः। आ तू न॰…॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया। आ तू न॰…॥ ५ ॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि। आ तू न॰…॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्। आ तू न॰…॥७॥ [७।३]

—:०:—

सूक्त ७५

ऋषिः—परुच्छेपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अत्यष्टिः ॥ मन्त्र ३।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निः सृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि । आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते । महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे । ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३ ॥ [७।४]

—:o:—

सूक्त ७६

ऋषिः—वसुक्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् मन्त्र ८ ।

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः । यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् । अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २ ॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव । कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् । मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्। गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन। वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः। स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

व्यानलिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः। आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥ [७।५]

—:०:—

सूक्त ७७

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता— इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ८ ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः। तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै। शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्। दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः। अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा। अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः। अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः। प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते। स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥ [७।६]

—:०:—

सूक्त ७८

ऋषिः—शंयुः ॥ देवता – इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद् गवे न शाकिने ।१।

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

कुवित्संस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ [७।७]

—:०:—

सूक्त ७९

ऋषिः—१ (पूर्वार्धस्य) शक्तिः; १ (उत्तरार्धस्य) वसिष्ठः, (शाठ्यायनके); १—२ वसिष्ठः (ताण्डके) ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती) ॥ मन्त्र २ ।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः। त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ [७।८]

—:०:—

सूक्त ८०

ऋषिः—शंयुः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती) ॥ मन्त्र २।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः। येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ १ ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे। विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥ २ ॥ [७।९]

—:०:—

सूक्त ८१

ऋषिः—पुरुहन्मा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती) ॥ मन्त्र २।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥ [७।१०]

—:०:—

सूक्त ८२

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ॥ मन्त्र २ ।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे । नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥ [७।११]

—:०:—

सूक्त ८३

ऋषिः—शंयुः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ॥ मन्त्र २ ।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् । छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया । अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥ [७।१२]

—:०:—

सूक्त ८४

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः १

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ।२।

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥ [७।१३]

—:०:—

सूक्त ८५

ऋषिः—१, २ प्रगाथः; ३, ४ मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती ।) मन्त्र ४ ।

मा चिदुन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् । विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये । अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् । उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥ [७।१४]

—:०:—

सूक्त ८६

ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १ ।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू । स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥

[७।१५]

—:०:—

सूक्त ८७

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—१—६ इन्द्रः; ७ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् । गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि । उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच । एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् । यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजि सौश्रवसं जयेम ४

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार । यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य । गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य । धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [७।१६]

—:०:—

सूक्त ८८

ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ६ ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण । तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे । पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः । तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्। सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण। बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ [७।१७]

—:०:—

सूक्त ८९

ऋषिः—कृष्णः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—त्रिष्टुप् ।। मन्त्र ११ ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै। वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्। कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि। अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके। अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्। तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे। आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन। अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्। नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले। यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे। वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥११॥ [७।१८]

—:०:—

सूक्त ९०

ऋषिः—भरद्वाजः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ३ ।

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्। द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार। घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २ ॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः। अपः सिषासन्त्स्वऽ१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥ [७।१९]

—:०:—

सूक्त ९१

ऋषिः—अयास्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र १२ ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नं ऋतप्रंजातां बृहतीमंविन्दत् । तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजंन्योऽयास्यं उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्यांना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः । विप्रं पदमङ्गिरसो दधांना यज्ञस्य धाम प्रथमं मंनन्त ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावंदद्भिरश्मन्मयांनि नहंना व्यस्यंन् । बृहस्पति-रभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्चं विद्वाँ अंगायत् ॥ ३ ॥

अवो द्वाभ्यां पर एकंया गा गुहा तिष्ठंन्तीरनृंतस्य सेतौ । बृहस्पति-स्तमंसि ज्योतिंरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवंः ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयथेमपांचीं निस्त्रीणि साकमुंदधेरंकृन्तत् । बृहस्पति-रुषसं सूर्यं गामर्कं विंवेद स्तनयंन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघांनां करेणेव वि चंकर्ता रवेण । स्वेदाञ्जि-भिराशिरंमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अंमुष्णात् ॥ ६ ॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधांयसं वि धंनसैरंददः । ब्रह्मंणस्पतिर्वृषंभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविंणं व्या[नट् ॥७॥

ते सत्येन मनंसा गोपंतिं गा इंयानासं इषणयन्त धीभिः । बृहस्पतिं-र्मिथोअंवद्यपेभिरुदुस्रियां असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥

तं वर्धयंन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानंदतं सधस्थे । बृहस्पतिं वृषंणं शूरंसातौ भरेभरे अनुं मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥

यदा वाजमसंनद् विश्वरूंपमा द्यामरुंक्षदुत्तंराणि सद्म । बृहस्पतिं वृषंणं वर्धयंन्तो नाना सन्तो बिभ्रंतो ज्योतिंरासा ॥ १० ॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः । पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य । अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥ [८।१]

—:०:—

सूक्त ९२

ऋषिः—१—१२ प्रियमेधः; १६—२१ पुरुहन्मा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री; [४—७, ९—१२ अनुष्टुप्; ८, १३ पङ्क्तिः; १४, १५ बृहती]; १६—२१ बार्हतः प्रगाथः (समा—बृहती+विषमा—सतोबृहती) ॥ मन्त्र २१ ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ।१।
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत ॥३॥
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् । पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत । वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥

यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः । भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् । स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् । अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते । अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् । पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि । हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् । इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त-मृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ १८ ॥

अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः। सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१ ॥ [८।२]

—:०:—

सूक्त ९३

ऋषिः—१—३ प्रगाथः; ४—८ देवजामयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ८।

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि। नहि त्वा कश्चन प्रति ।२।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते। भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः। त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः। उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ।६।

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः। वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा। स विश्वा भुव आभवः ॥८॥ [८।३]

—:०:—

सूक्त ६४

ऋषिः—कृष्णः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१—३, १०, ११ त्रिष्टुप्; ४—६ जगती ॥ मन्त्र ११ ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ । शीभं
राजन् सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् । प्रत्वक्षसं वृषभं
सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे । ओजः
कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ।५।

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या|नि दुष्टरा । न ये
शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीमैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे । इत्था ये प्रागुपरे
सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥

गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं|सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्। वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥ [८४]

—:०:—

सूक्त ९५

ऋषिः—गृत्समदः; २—४ सुदाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ अष्टिः; २—४ शक्वरी ॥ मन्त्र ४ ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां० ॥ ३ ॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥ [८५]

—:०:—

सूक्त ९६

ऋषिः—१—१० पूरणः ६—६ ब्रह्मा च, सूर्यवङ्गिराश्च; १० ब्रह्मा च; ११—१६ रक्षोहाः; १७—२३ ब्रह्मा; २४ प्रचेताः ॥ देवता—१—५ इन्द्रः; ६—१०,

१७—२३ यक्ष्मनाशनम्, ११—१६ गर्भदोषनाशनम्; २४ दुःष्वप्ननाशनम् ॥ छन्दः – १—८ त्रिष्टुप्; ९ शक्वरीगर्भा जगती; १०—१८ अनुष्टुप्; १९ ककुम्मत्यनुष्टुप्; २० चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्; २१ उपरिष्टाद् विराड् बृहती; २२ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप् २३ पथ्यापङ्क्तिः; [२४ अनुष्टुप्] ॥ मन्त्र २४ ।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च । इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति । इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति । न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् । निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ । आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् । ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव । तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् । इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हैमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः । अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् । जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेह्लि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि । यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् । यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्। यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि । यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् । यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः । यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि । यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर । परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥ [८ ६]

—:०:—

सूक्त ९७

ऋषिः—कलिः । देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती); ३ बृहती ॥मन्त्र ३ ।

वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति । सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥

कदु न्वं१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्। केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥ [९।१]

सूक्त ९८

ऋषिः— शयुः ॥ देवता — इन्द्रः ॥ छन्दः— बार्हतः प्रगाथः बृ० + स० बृ० । मन्त्र २ ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववर्तः ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः। गामश्वं रथ्य॒मिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ [९।२]

—:०:—

सूक्त ९९

ऋषिः—मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः बृ० + स० बृ० ॥ मन्त्र २ ।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ [९।३]

—:०:—

सूक्त १००

ऋषिः— नृमेधः ॥ देवता — इन्द्रः ॥ छन्दः— उष्णिक् ॥ मन्त्र ३ ।

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥ [६।४]

—:०:—

सूक्त १०१

ऋषि:—मेध्यातिथि: ॥ देवता—अग्नि: ॥ छन्द:—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् २

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

—:०:—

सूक्त १०२

ऋषि:—विश्वामित्र: ॥ देवता—अग्नि: ॥ छन्द:—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

ईलेन्यो नमस्य स्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईलते ॥ २ ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ [६।६]

—:०:—

सूक्त १०३

ऋषि:—१ सुदीतिपुरुमीढौ; २, ३ भर्गः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्द:—१, २ बृहती ३ सतोबृहती ॥ मन्त्र ३ ।

अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् । अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे । आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे । ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥ [६।७]

—:o:—

सूक्त १०४

ऋषिः—१, २ मेध्यातिथिः, ३, ४ नृमेधः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः (विषमा—बृहती + समा—सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४ ।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु । उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् । तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥ [६।८]

—:o:—

सूक्त १०५

ऋषिः—१, ३ नृमेधः; ४, ५ पुरुहन्मा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ बार्हतः प्रगाथः (१, ४ बृहती २, ५ सतोबृहती); ३ बृहती ॥ मन्त्र ५ ।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशुं जेतारं हेतारं रथीतम-मतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः। विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥

इन्द्र तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि। हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ ५ ॥ [९।९]

—:०:—

सूक्त १०६

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ मन्त्र ३ ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम्। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ [९।१०]

—:०:—

सूक्त १०७

ऋषिः—१—३ वत्सः; ४—१२ बृहद्दिवोऽथर्वा; १३, १४ ब्रह्मा; १५ कुत्सः ॥ देवता—१—१२ इन्द्रः; १३—१५ सूर्यः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री; ४—१२ १४, १५ त्रिष्टुप्; १३ आर्षी पङ्क्तिः ॥ मन्त्र १५ ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ।१।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ।३।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः । सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति । अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥

त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः । स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ६ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः । ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि । चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे । आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् । आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः । महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ११ ॥

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वं मिन्द्रमेव। स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ १२ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्। दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥ [९।११]

—:०:—

सूक्त १०८

ऋषिः—नृमेधः ॥ देवता— इन्द्रः ॥ छन्दः—१ गायत्री ॥ २ ककुबुष्णिक्, ३ पुर-उष्णिक् ॥ मन्त्र ३ ।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १ ॥

त्व हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ [९।१२]

—:०:—

सूक्त १०९

ऋषिः—गोतमः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ मन्त्र ३ ।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः। या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः। प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रम् हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः। व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ [६।१३]

—:०:—

सूक्त ११०

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥ [६।१४]

—:०:—

सूक्त १११

ऋषिः—पर्वतः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक् ॥ मन्त्र ३ ।

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये। यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे। अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥ [६।१५]

—:०:—

सूक्त ११२

ऋषिः — सुकक्षः ॥ देवता — इन्द्रः ॥ छन्दः — गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ।२।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥ [६।१६]

—:०:—

सूक्त ११३

ऋषिः — भर्गः । देवता — इन्द्रः ॥ छन्दः — बार्हतः प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ॥ मन्त्र २ ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः । उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥ [६।१७]

—:०:—

सूक्त ११४

ऋषिः — सौभरिः ॥ देवता — इन्द्रः ॥ छन्दः — गायत्री ॥ मन्त्र २ ।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः। यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित पितेव हूयसे ॥ २ ॥ [६।१८]

—:०:—

सूक्त ११५

ऋषिः—वत्सः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभं। अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्। येनेन्द्रः शुष्ममिद् दुधे ॥ २ ॥

ये त्वामिन्द्र न तुंष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः। ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥३॥ [६।१९]

—:०:—

सूक्त ११६

ऋषिः—मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बृहती ॥ मन्त्र २ ।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव। वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्। सकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥ [६।२०]

—:०:—

सूक्त ११७

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—विराट् [त्रिपदा गायत्री] ॥ मन्त्र ३ ।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ [९।२१]

—:०:—

सूक्त ११८

ऋषि:—१—२ भर्गः; ३, ४ मेध्यातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (विषमा—बृहती + समा – सतोबृहती) ॥ मन्त्र ४।

शग्ध्यूषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः। नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥

इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥ [९।२२]

—:०:—

सूक्त ११९

ऋषि:—१ आयुः; २ श्रुष्टिगुः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ॥ मन्त्र २।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः । अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥ [६।२३]

—:०:—

सूक्त १२०

ऋषिः—देवातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती) ॥ मन्त्र २ ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा । कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ [६।२४]

—:०:—

सूक्त १२१

ऋषिः—देवातिथिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती ॥ मन्त्र २ ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ (ऋ० ८।३२।२२)

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ [६।२५]

—:०:—

सूक्त १२२

ऋषिः—शुनःशेषः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥ (ऋ० १।३०।१३-१५)

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ [९।२६]

—:०:—

सूक्त १२३

ऋषिः—कुत्सः ॥ देवता सूर्यः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र २ ।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१॥ (ऋ० १।११५।४)

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥ [९।२७]

—:०:—

सूक्त १२४

ऋषिः—१—३ वामदेवः; [४—६ भुवनः] ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री; ३ पादनिचृद् गायत्री; [४—६ त्रिष्टुप्] मन्त्र ६ ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ ४ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् । हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् । अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥ [९।२८]

—:०:—

सूक्त १२५

ऋषिः—सुकीर्तिः ॥ देवता—१—३, ६, ७ इन्द्रः; ४, ५ अश्विनौ ॥ छन्दः—१—३, ५—७ त्रिष्टुप्; ४ अनुष्टुप् ॥ मन्त्र ७ ।

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व । अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ।१। (ऋ० १०।१३१।१-७)

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २ ॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु । गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः । यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु । तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥ [९।२९]

—:०:—

सूक्त १२६

ऋषिः—वृषाकपिरिन्द्राणी च ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ मन्त्र २३ ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत । यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥ (ऋ० १०।८६।१-२३)

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः । नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः । यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि । श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्य॑दूदुषत् । शिरो न्व॑स्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥ ऋ० १०।८६।५)

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् । न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वी॑व हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने । किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्य॑मीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते । उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥ (ऋ० १०।८६।९)

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति । वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्र-पत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् । नह्य॑स्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥ (ऋ० १०।८६।११)

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते । यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥ (ऋ० १०।८६।१२)

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे । घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥ (ऋ० १०।८६।१३)

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् । उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् । मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् । सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते । सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् । असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् । पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना । नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै । य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥ (ऋ० १०।८६।२१)

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन। क्व १स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ २२ ॥ (ऋ० १०।८६।२२)

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं संसूव विंशतिम् । भद्रं भल त्यस्यां अभूद् यस्यां उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥ [६।३०]

अथ कुन्ताप सूक्तानि (खिलानि)

(सूक्त १२७ - १३६ तक) तिस्रः नारा शंस्यः

सूक्त १२७

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते । षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥ १ ॥

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश । वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥ २ ॥

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः । त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥ [१]

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः । नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६ ॥ [२]

चतस्रः पारिक्षित्यः

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति । वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् । कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् । जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् । जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥ [३]

चतस्रः कारव्यः

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् । ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपरीरिषत् । मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् । वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥ (४) [६।३१]

—:०:—

सूक्त १२८ अथ पञ्च क्लृप्तयः

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः । सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः । तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादुदिः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥ (५)

योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः । अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः । सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः । अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः । सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥

(६)

(१२-१६ गाथाएं)।

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः। विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः। त्व रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥

यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः। इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन्। स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥

ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम्। पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥ (७) [६।३२]

—:०:—

सूक्त १२९ (ऐतशःप्रलापाः)

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥ प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् ॥ २ ॥

तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥

साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥ क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥

यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥ परि त्रयः ॥ ८ ॥

पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥

अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥

सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥१३॥ पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥१४॥

पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥ बद्धं वो अघा इति ॥ १६ ॥

अजागार केविका ॥ १७ ॥ अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥ १८ ॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥ अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥ [९।३३]

—:०:—

सूक्त १३०

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥ को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥ ७ ॥ अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥ ८ ॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥ ११ ॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति ॥ १८ ॥
अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९॥ उयं यकांशलोकका ॥२०॥ [९।३४]

—:०:—

सूक्त १३१

आमि नोनिति भद्यते ॥ १ ॥ तस्य अनु निभञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥ शतं वा भारती शवः ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ५ ॥
अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफेन इव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥

इदं मह्यं मदुरिति ॥ १० ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥
पाक बलिः ॥ १२ ॥ शक बलिः ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥ अरदुपरम ॥ १५ ॥
शयो हत इव ॥ १६ ॥ व्याप पूरुषः ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥ [९।३५]

—:०:—

सूक्त १३२

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥ अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥ यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यागारं पुनःपुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥ [९।३६]

—:०:—

सूक्त १३३

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै०···॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै०···॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि । न वै०...॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै०...॥ ५ ॥

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे । न वै०...॥ ६ ॥ [६।३७]

—:०:—

सूक्त १३४

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्ष्लिली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥ [६।३८]

—:०:—

सूक्त १३५

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः । दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥ १ ॥

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहिं पादम् । उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥ २ ॥

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् । पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ॥ ३ ॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव। होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ॥ ५ ॥

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्। तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥ ६ ॥

तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः। अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥ ७ ॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः। उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः। इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम्। युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः। विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते। श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया। इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥ [६।३६]

—:०:—

सूक्त १३६

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्। मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत्। विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कधूकेवपद्यते। वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥

यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः। सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

महानग्न्यतृप्नद्वि मोक्रदुदस्थानासरन्। शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः। यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥ ७ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः। यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः। इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति। अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥ १० ॥

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति। इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम्। कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

वशा दुग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे। महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्। कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः। महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्। तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥ [६।४०]

॥ इति कुन्ताप सूक्तानि समाप्तानि ॥

सूक्त १३७

ऋषिः—१ शिरिम्बिठिः; २ बुधः; [३ वामदेवः;] ४—६ ययातिः; ७—११ तिरश्ची [राङ्गिरसो] द्युतानो वा; १२—१४ सुकक्षः ॥ देवता—१ अलक्ष्मीनाशनम्; २ विश्वेदेवा ऋत्विक्स्तुतिर्वा; [३ दधिक्राः;] ४—६ सोमः पवमानः; ७, ८, १०-१४ इन्द्रः; ८ (चतुर्थः पादः) मरुतः; ९ इन्द्रो बृहस्पतिश्च ॥ छन्दः—१, ३, ४—६ अनुष्टुप्, २ जगती; ७—११ त्रिष्टुप्; १२—१४ गायत्री ॥ मन्त्र १४।

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः। हुता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये। निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ २ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः । आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः । नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः । विशो अदेवीरभ्या३चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र । गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ । त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ।१२।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः १३

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । वत्रक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥
॥ १४ ॥ [६।४१]

—:०:—

सूक्त १३८

ऋषिः—वत्सः ॥ देवता— इन्द्रः ॥ छन्दः— गायत्री ॥ मन्त्र ३ ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।१।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ।२।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ।३।

—:०—

सूक्त १३९

ऋषिः—शशकर्णः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २, ३ गायत्री; ४ बृहती; ५ ककुप् ॥ मन्त्र ५ ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे । प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना ।२

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ३

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते । अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ [६।४३]

—:०:—

सूक्त १४०

ऋषिः—शशकर्णः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ बृहती; २—४ अनुष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् । मन्त्र ५ ।

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः । अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ १ ॥

आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि । यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव । पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥ [६।४४]

—:०:—

सूक्त १४१

ऋषिः—शशकर्णः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्; २ जगती; ३ अनुष्टुप्; ४, ५ बृहती ॥ मन्त्र ५ ।

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा । वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा । यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ।२।

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता । इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४ ॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् । तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥ [६।४५]

—:०:—

सूक्त १४२

ऋषि—शशकर्णः ॥ देवता-अश्विनौ ॥ छन्दः—१–४ अनुष्टुप् ५, ६ गायत्री ॥ मन्त्र ६ ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊधभिः । यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६॥

—:०:—

सूक्त १४३

ऋषयः—१—७ पुरुमीढाजमीढौ; ८ वामदेवः; ९ मेध्यातिथिः ॥ देवता—अश्विनौ ॥ छन्दः — त्रिष्टुप् ॥ मन्त्र ९ ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः । यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः । युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः। ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम्। पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन। मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे। नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन् ॥ ६ ॥

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना। उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्। क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः। सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् तां उप याता पिबध्यै ॥९॥ [९।४७]

अथर्ववेद-संहिताय

इति विंशं काण्डम् समाप्तम्।

सूक्तानि १४३, मन्त्राः ९४६।

॥ इति शौनकीया अथर्ववेदसंहिता संपूर्णा ॥

शुभ सूचना

हमारे यहां से चारों वेदों के शुद्ध प्रामाणिक, सस्वर मूलपाठ प्रकाशित हो रहे हैं। अथर्ववेद आपके हाथों में है। इसी प्रकार के नयनाभिराम मोटे अक्षरों में ऋग्वेदादि सब वेद प्रकाशित किये जा रहे है।

इसके अतिरिक्त वेद-वेदांग, कर्मकाण्डादि के ग्रन्थ भी हमारे यहां सुलभ हैं।

नोट : सूचीपत्र मुफ्त मंगायें।

देव वाणी प्रकाशन

१०३ ए०, कमला नगर, दिल्ली—७